स्वयं प्रकाश

वरिष्ठ पुरस्कृत कहानीकार, लेखक स्वयं प्रकाश का जन्म 20 जनवरी 1947 को हुआ। उनकी महान कृतियां मात्रा और भार, सूरज कब निकलेगा, आसमां कैसे कैसे, अगली किताब, आएंगे अच्छे दिन भी, आदमी जात का आदमी, चर्चित कहानियां, अगले जनम, आधी सदी का सफरनामा, पार्टीशन (कहानी संग्रह) चलते जहाज पर, बीच में विनय, उत्तर जीवन कथा, ईंधन, ज्योति, रथ के सारथी (उपन्यास), स्वातः सुखाय, दूसरा पहलू, रंगशाला में एक दोपहर (निबंध संग्रह) फीनिक्स नाटक।

स्वयं प्रकाश जी को राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार, वनमाली स्मृति पुरस्कार, सुभद्रा कुमार चौहान पुरस्कार, पहल सम्मान से पुरस्कृत है।

सम्पर्क : 3/33, ग्रीन सिटी, ई-1,
अरेरा कालोनी, भोपाल
मो. : 09425018293

मूल्य : 100.00 रुपये (साधारण)
: 150.00 रुपये (सज़िल्द)

ISBN 978-81-7007-214-0

श्रेष्ठ हिन्दी कहानियाँ (1970 – 1980)

सम्पादक
स्वयं प्रकाश

प्रकाशकीय

पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि. नई दिल्ली की श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशन योजना के अन्तर्गत आज़ादी के बाद छय संकलनों में हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों का प्रकाशन किया जा रहा है। संकलनों में लेखकों का क्रम कहानी दशकों के अनुसार किया गया है, पर उनकी कहानियों को दशकों से मुक्त रखा गया है। संपादकों ने कोशिश की है कि लेखकों की यथासंभव श्रेष्ठ कहानियाँ चुनी जायें और संकलन में सभी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व हो सके। संकलनों की पृष्ठ संख्या को अतिविस्तार से बचाने के आग्रह में कुछ और महत्वपूर्ण लेखकों को शामिल नहीं किया जा सका। इसके लिए हमें खेद है।

आशा है ये संकलन पाठकों के लिए उपयोगी और सार्थक प्रमाणित होंगे।

–प्रकाशक

भूमिका

हिन्दी कहानी में सत्तर से अस्सी के दशक को नयी कहानी और जनवादी कहानी के बीच का दशक माना जा सकता है। हम इसे समान्तर कहानी का दशक भी कह सकते हैं।

इस दशक की प्रमुख राजनीतिक घटनाएं हैं बंगलादेश का उदय, नक्सलवाद का उभार, देश में आन्तरिक आपातकाल की घोषणा और केन्द्र में पहली बार एक गैरकांग्रेसी सरकार की स्थापना। इन घटनाओं का और खासकर नक्सलवादी उभार तथा आपातकाल का हिन्दी साहित्य पर और हिन्दी कहानी पर यदि कोई प्रभाव न दिखाई देता, तो ही आश्चर्य की बात होती।

लेकिन कहानी के बदलने के कुछ अपने भीतरी कारण भी थे। साहित्यिक विधाओं की अपनी भी एक गतिकी होती है और केवल समाजशास्त्रीय आग्रहों से उसकी घट-बढ़ को नहीं नापा जा सकता।

नयी कहानी, कहानी के पारम्परिक यथार्थवादी ढाँचे को हमेशा के लिए तोड़कर, शहरी मध्यवर्ग को रचना चेतना के मध्य स्थापित कर और स्वतंत्रता के साथ आये सपनों से मोहभंग को रेखांकित कर एक तरह से 'पूर्णकाम' हो गयी। अब उसके पास कहने को कुछ नहीं बचा। नयी कहानी आन्दोलन के तमाम रहनुमा या तो खामोश हो गये या उधर-उधर निकल गये। मोहन राकेश नाटक में चले गये, कमलेश्वर सम्पादन में, निर्मल वर्मा वैचारिक निबंधों में और राजेन्द्र यादव खामोश हो गये। नई कहानी के बाद के कहानीकारों ने अपने सर्वनकारवादी ठठ्ठे से उनके भाषिक तूमार को भी फच्च से ध्वस्त कर दिया। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया और काशीनाथ सिंह 'महानता' जैसे हर प्रत्यय का पटाक्षेप करने के लिए ही मानो अवतरित हुए।

लेकिन इसके बाद जो आये उन्होंने सचमुच कहानी को 'सपाट चेहरे वाला आदमी' बना दिया। अब कहानी में न पात्रों के नाम थे न स्थान का कोई विवरण, न कोई कथ्य या कथानक न शिकवा या विलाप, न स्वप्न या आकांक्षा न कोई क्रियाशीलता। यह धीरे-धीरे एक ऊबे हुए आदमी का एकालाप बन गयी। जो 'जीभ और जाँघ के चालू भूगोल' से भी ऊब चुका है। अकहानी-सहज कहानी-एण्टी कहानी-सचेतन कहानी-एब्सर्ड कहानी और किसिम-किसिम की बोहेमियन गैर जिम्मेदारियों ने न सिर्फ कहानी के पाठक भगाये बल्कि उसे साहित्य के केन्द्र से भी बहुत परे धकेल दिया। लेकिन देश की जनता इस निरानन्द बौद्धिक निष्क्रियता का सम्मान करने को तैयार नहीं थी। दक्षिण में नक्सलबाड़ी से एक नये तूफान ने क्षितिज पर मंडराना शुरू कर दिया था और बांग्लादेश के जन्म से बासठ की पराजय की खलिश को भी कम कर दिया था। अगर पूर्वी पाकिस्तान की सैनिक तानाशाही को उखाड़ फेंका जा सकता है तो दिल्ली की नाकारा सरकार को क्यों नहीं। लेकिन यह कौन करेगा। ढाई सौ ग्राम थूकने और सबको कोसकर सो जाने वाले अकहानी के नायक? क्या हम हम देश की जनता पर भरोसा करना बिल्कुल भूल गये हैं? तो फिर भारत के असल भूमिपुत्र के दुख-सुख, हंसी-आंसू, आशा-आकांक्षा को समझने और कहानी के केन्द्र में लाने की कोशिश क्यों नहीं करते?

यही है इस दशक की कहानी का प्रस्थान बिन्दु। और दिलचस्प बात है कि अकहानी की निष्क्रियता और संवेदनशून्यता को झटककर कहानी को पुनः सक्रिय लोगों की जिन्दा दास्तान बनाने की यह मुहिम सेठों की पत्रिका 'सारिका' से शुरू हुई। अक्टूबर 1974 में प्रकाशित 'सारिका' का 'समांतर कहानी विशेषांक' इस आन्दोलन का पहला घोषित दस्तावेज़ है। अपने वैचारिक ढीले-ढालेपन, मध्यवर्गीय विभ्रमों और 'चिरंजन वाम' जैसे गैरजुझारू आवेगों के बावजूद समांतर ने देश भर के जनपक्षीय कहानीकारों को जोड़ने की ईमानदार तथा प्रभावी कोशिश की, दीगर भारतीय भाषाओं के लेखकों से दोस्ताना ताल्लुकात कायम किये और मराठी के दलित आन्दोलन की तर्ज पर हिन्दी में भी दलित लेखन का सूत्रपात किया। आज समांतर से जुड़े कहानीकारों मसलन कामतानाथ, इब्राहिम शरीफ, आलम शाह खान, दामोदर सदन, मेहरुन्निसा परवेज, रमेश उपाध्याय, जितेन्द्र भाटिया और उनकी कहानियों पर नजर डालें तो एक चीज़ तो एकदम साफ हो जाती है कि इन लोगों ने जमीन से जुड़े लोगों की वास्तविक समस्याओं पर लिखने की कोशिश की और मेहनतकश मनुष्य को कहानी के केन्द्र में स्थापित कर दिया। ये न होता तो अगले दशक में हिन्दी कहानी प्रेमचन्द की प्रगतिशील परम्परा से दोबारा न जुड़ पाती और जनवादी कहानी की कल्पना भी न की जा पाती।

लेकिन अगले दशक की कहानी को इमर्जेन्सी के रूप में एक और सबक हासिल हो

चुका था। कविता में काफ़ी चंचलता और बाचालता हो चुकी थी। वहाँ लालकिला, लाल निशान, लाल सलाम, लाल सूरज का अतिरेक हो चुका था, कविता हथियार बन चुकी थी (हालांकि उससे कभी किसी को खरोंच तक नहीं लगी) और फुटपाथी राजनीति से उठकर 'मेरा नाम तेरा नाम वियतनाम' तथा 'हमारा नेता चेयरमेन माओ' जैसी विशुद्ध मूर्खताएं बुद्धिजीवियों के भेजे में भी कोटर बन रही थीं। गनीमत है 6 से 7 की कहानी इससे बची रही, अपनी सीमाओं को समझती रही और अपनी बात तर्क और विवेक के साथ करती रही।

इब्राहिम शरीफ और इस्राइल उन कहानीकारों में हैं जिन्होंने लगभग एक युग बाद ज़मीन और ज़मीन से जुड़े लोगों की बात कहानी में उठायी। हिन्दी कहानी शहरी निम्न-मध्यवर्ग के निहायत छोटे-छोटे सुख-दुखों में पिछले दिनों इस बुरी तरह उलझी हुई थी कि ज़मीन और ज़मीन से जुड़े लोगों को लगभग भूल ही चुकी थी। नक्सलवाद के उभार ने कामू-काफ्का-कीर्केगार्ड कॉलिन विल्सन-इलियट और सार्त्र की बात करने वालों को सहसा याद दिला दिया कि इस देश के अस्सी प्रतिशत लोग आज भी अपने रोटी-रोजगार के लिए जमीन पर आश्रित हैं और इस युग के नव सामंत वहां से भी उन्हें तेजी से बेदखल करते जा रहे हैं।

इब्राहिम शरीफ़ की कहानी 'जमीन का आखरी टुकड़ा' किसानों के तेज़ी से भूमिहीन होते जाने की ट्रेजेडी को ही चित्रित नहीं करती, वह इस तथ्य पर भी विचार करने को विवश करती है कि स्वतंत्रता के बाद भी गांव-देहात में सामंती सम्बंध यथावत बने हुए हैं। वह पुन: इस तथ्य पर विचार करने को प्रेरित करती है कि तथाकथित जमींदारी उन्मूलन के बावजूद देश में भूमिहीन खेत मजदूरों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। साम्यवादियों का स्पप्न 'जोते जिसकी जमीन' और नेहरू के समाजवादी स्वप्न 'सहकारी खेती' की धज्जियां उड़ चुकी हैं। और आज़ादी के बाद और अधिक बलशाली बनकर उभरे नवसामंत वर्ग के विरुद्ध घृणा आक्रोश की अभिव्यक्ति ही क्या नक्सलवाद की जड़ में नहीं है? 'जमीन का आखिरी टुकड़ा' में एक बेहद मानीखेज़ कथन है- 'कहीं किसी मुर्गे को गलतफहमी हो गयी थी। वह बाँग देने लगा। सबेरा होने से पहले ही सबेरे की उतावली में।' ऐसे ही काव्यात्मक स्पर्श किसी रचना को कलाकृति बनाते हैं।

इब्राहिम शरीफ का भरी जवानी में निधन हो गया था। शरीफ़ होते तो नक्सलवाद का वर्तमान विस्तार और प्रभाव देखकर कहते 'मैंने कहा था न।'

इस्राइल इब्राहिम शरीफ से एक कदम आगे बढ़कर ज़मीन जाने के कारण और उसकी प्रतिक्रिया पर भी रोशनी डालते हैं। ज्ञानरंजन की 'फेंस के इधर और उधर' की ही तरह इस्राइल की कहानी 'फ़र्क' भी हिन्दी की एक मील पत्थर कहानी है। इस्राइल जीवन

भर श्रमिक आन्दोलन से जुड़े रहे इसलिए वह अपने जीवनानुभव को बहुत आसानी, कुशलता और प्रामाणिकता के साथ कहानी में विन्यस्त कर सकते थे। उन्होंने ऐसा किया भी, और इसलिए उनके विवरणों में चंचल आक्रोश या चपल उत्तेजना नहीं एक प्रौढ़ ठण्डापन दिखाई देता है, लेकिन 'फ़र्क' में वह एक महान रचनाकार की तरह भारत में भूमिसुधार न हो पाने और सामन्तवाद के लगभग सही-सलामत बचे रह जाने के गहरे कारणों की ओर इशारा करते हैं। वे कृषि क्रांति के बरक्स सर्वोदय को रखकर दिखाते हैं और प्रसंगवश इसी में हिंसा-अहिंसा का प्रश्न उठ खड़ा होता है। सर्वोदय-भूदान-ग्रामदान आदि का पूरा अभियान सामंतों की उपाजाऊ ज़मीनों को छिनने से बचाने का एक सत्तापोषित उपक्रम था। यह वह ज़माना था जब 'कम्युनिस्ट' एक गाली थी और कम्युनिस्टों से तर्क करने की बजाय उन्हें सिर्फ एक शब्द 'हिंसा' की लाठी से पीटकर एरीना से बाहर कर दिया जाता था। इस शानदार और यादगार कहानी को लिखते समय शायद इस्राइल को भी अन्दाजा नहीं होगा कि सर्वोदय को श्रमिकों के कटघरे में खड़ा करके दरअसल वह गांधीवाद अर्थशास्त्र का मर्सिया लिख रहे हैं।

आलमशाह खान ने अपने नब्बे प्रतिशत कहानियाँ सड़क पर से कचरा बीनने वालों, धूलधोयों, गत्ते-कागज के खिलौने बनाकर बेचने वालों, शरीर बेचनेवालियों, होटलों में काम करने वाले बच्चों आदि के बारे में लिखीं। समाज की तलछट के इन नीले फूलों पर आलमशाह खान ने इतनी तन्मयता के साथ लिखा कि वह उनकी बोली-बानी, सुख-दुख, हँसी-पीड़ा, गम-गुस्सा और ममता-मायूस-से जैसे एकमेक हो गये। बहुत कम कहानीकार इस तरह अपने पात्रों के जीवन के साथ दूध बताशा हो पाते हैं। आलमशाह खान को इस पात्र चयन और तन्मयता के लिए भी आदर के साथ याद किया जा सकता है, लेकिन बड़प्पन के जलवे सिर्फ तासीर में नहीं तहरीर में भी नुमांया होते हैं।

'आवाज़' की अर्थी' इमर्जेन्सी के बाद लिखी गयी कहानी है। कहानी एक बच्चे की है जिसके मुंह से गोला ठूंसकर और ऊपर से मुल्तानी मिट्टी थोपकर उसे हनुमान बना दिया जाता है। उसका काम दिन भर मोहल्ले-मोहल्ले घूमकर उछलकूद करना और भीख मांगना है। इस बीच न वह बोल सकता है, न गा सकता है, न खा-पी सकता है। अभिव्यक्ति पर इमर्जेन्सी के दौरान थोपी गयी रोक की क्या इससे भी अच्छी कोई व्यंजना हो सकती थी! सबको याद है कि इमर्जेंसी के दौरान अखबारों-पत्रिकाओं के पन्ने काले हो गये थे, ज़िला रसद अधिकारिनुमा लोगों को सेन्सर अधिकारी बना दिया गया था और वे ही तय करते थे कि क्या छपना चाहिए क्या नहीं। कहानी 'आवाज़ की अर्थी' के अंत में हनुमान बना मुंहबन्द बच्चा विद्रोह कर देता है। हममें से कितने ऐसा कर पाये थे।

उधर जगदम्बाप्रसाद दीक्षित एक ऐसे जीवन से हमें परिचित कराते हैं जहाँ चौबीस

घण्टे बारह महीनों हर समय इमर्जेन्सी चल रही है। उपन्यास 'मुरदाघर' और कहानी 'मुहब्बत' लिखकर जगदम्बाप्रसाद दीक्षित ने अपने लेखन में यथार्थवाद के नये और बेबाक तेवर से हिन्दी संसार को चौंका दिया। ऐसा नहीं कि वेश्याओं पर हिन्दी में पहले कहानियाँ लिखी नहीं गयी थीं। कमलेश्वर की कहानी 'माँस का दरिया' तो बहुत चर्चित रही थी। मण्टो को भी अभी लोग भूले नहीं थे। आलमशाह खान भी 'किराये की कोख' लिख चुके थे, लेकिन सबने वैश्याओं के जीवन के बारे में ही लिखा था, वैश्याओं के माध्यम से समाज में बढ़ती संवेदनहीनता और श्रमजीवी मनुष्य के भयानक अकेलेपन पर टिप्पणी नहीं की थी। हिन्दी में एक लम्बे समय से इससे अधिक बैचेन करने वाली कहानी नहीं लिखी गयी थी। हैरानी यह देखकर होती है कि ऐसे पात्रों के बारे में बाद की पीढ़ियों के कहानीकारों ने लगभग कुछ नहीं लिखा-मानो समाज में उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया हो। मसलन मेरी पीढ़ी के पास वैश्याओं के जीवन पर एक अच्छी कहानी नहीं है।

समाज में बढ़ रही संवेदनहीनता पर ही एक भिन्न प्रकार से टिप्पणी करते हैं मनोहर श्याम जोशी। ऋत्विक घटक और हजारीप्रसाद द्विवेद्वी के मुरीद मनोहर श्याम जोशी का अपना एक अलग अन्दाज़े बयाँ है। उनके गद्य में विदग्धता के साथ ही वाचालता का एक विचित्र संगम है। भाषा का खिलंदड़ापन साठ के सर्वउड़ाऊ ठठ्ठे की याद दिलाता है। दुनिया की बेहतरी के लिए मनोहर श्याम जोशी के पास कोई सपना नहीं है। बल्कि इस किस्म का सपना देखने वालों को वह खुलकर मज़ाक भी उड़ाते हैं। उनका आग्रह है कि यदि तटस्थ दृष्टि से, साक्षी भाव से दुनिया को देखा जाय तो इसकी नानारूपेण असंगतियों-विसंगतियों का आनन्द भी उठाया जा सकता है। मनोहर श्याम जोशी का आकर्षण इस बात में है कि वह जीवन की हर चीज़ से-वह जैसी भी है-प्यार करते हैं और उसमें बलात सुधार की कोशिश को अनावश्यक मानते हैं।

'सिल्वर वेडिंग' आधुनिकता और पारम्परिकता के संघर्ष या मुठभेड़ की कहानी नहीं हैं। जोशी का कथन यह है कि यहां तो आधुनिकता भी आएगी तो इसी तरह आएगी, आपको जँचे या न जँचे। एक पीढ़ी के लोग होंगे जिन्हें यह 'समहाउ इम्प्रॉपर' लगेगी लेकिन वे 'जो हुआ होगा' से मर जाएंगे और उनके अपने ही बच्चे भोगवाद की चकाचौंध में फिसलते हुए एक सामाजिक मनुष्य से एक आत्मकेन्द्रित उपभोक्ता में बदलते जाएंगे। बदलाव की प्रक्रिया सबके लिए सुखद हो ही नहीं सकती इसलिए बेहतर है समझ झरोखे बैठकर जग का मुजरा लिया जाये।

अपने उपन्यास 'झीनी भीनी बीनी चदरिया' के लिए सोवियतलेण्ड नेहरू पुरस्कार प्राप्त कहानीकार अब्दुल बिस्मिल्लाह इस दशक के उन महत्वपूर्ण कहानीकारों में से हैं जो कहानी की सीमाओं को समझते हैं और किसी भी कलारूप या कलाकृति को हथियार का

रूप देने में विश्वास नहीं रखते। जिन्हें पाठकों की सहजबुद्धि पर भरोसा है और जिनका मानना है कि सच्ची बात कहने के लिए चीखना ज़रूरी नहीं है। अब्दुल बिस्मिल्लाह ने ज़्यादा कहानियां नहीं लिखी हैं लेकिन 'अतिथि देवो भव' उनकी एक खूबसूरत कहानी है।

पता चलते ही कि सामने वाला व्यक्ति मुसलमान है एक अच्छे-खासे सदय-सहिष्णु-मानवीयता से भरपूर व्यक्ति का व्यवहार किस तरह बदल जाता है, इसका बड़ा मार्मिक चित्रण इस कहानी में हुआ है। मज़ेदार बात यह है कि जिसके साथ ऐसा व्यवहार किया जा रहा है वह इससे न रुंआसा हो रहा है न क्रुद्ध, बल्कि उसमें इस प्रकार के व्यवहार के प्रति एक सहज स्वीकार का भाव है, मानो इसके लिए वह ऐसा व्यवहार करने वाले को दोषी नहीं मान रहा हो। कहानी में कुछ दिलचस्प अण्डरटोन्स है। मुस्लिम अतिथि संस्कृत में पढ़ाई कर चुका है, संस्कृत का अध्यापक होने की कोशिश कर चुका है और अंततः एक मुस्लिम विद्यालय में इतिहास पढ़ा रहा है। वह देख रहा है कि जिसका वह अतिथि है वह गीता के श्लोकों का सही उच्चारण नहीं कर रहा है लेकिन इस संबंध में वह एक शब्द भी नहीं कह सकता-क्योंकि वह मुसलमान है। कहानी का शीर्षक भी व्यंग्यात्मक है। क्या अतिथि देवता होता है? हां, बशर्ते हिन्दू हो। मुसलमान होगा तो हम उससे बर्तन मँजवाएंगे।

ममता कालिया यूँ तो शहरी मध्यवर्गीय घर परिवार में महिलाओं की स्थिति के बारे में ही बात करती हैं, लेकिन नितान्त नये तेवर और सहज, जीवन्त और खिलखिलाती भाषा में। ममता कालिया की कहानी कला की कम ही चर्चा हुई है जबकि उनमें गज़ब की पठनीयता है। जो खास बात ममता कालिया में दिखाई देती है वही उन्हें अब्दुल बिस्मिल्लाह से कहीं जोड़ती भी है। ममता की स्त्री घर-गृहस्थी के रूटीन में फंसाकर नष्ट की जा रही है, ये वह जानती है और इसका पुरज़ोर प्रतिवाद भी करती है, लेकिन उसके स्वर में कोई आत्मदया, कटुता या आक्रोश नहीं है। वह किसी पुरुषविहीन संसार की ध्वजधारिणी नहीं है। परिवार स्वयं उसका चयन है इसलिए पति उसका शत्रु नहीं है। यदि वैसा होता तब तो उसका सीधा-सरल समाधान यही होता कि पति को छोड़ दिया जाए और विवाह संस्था से बाहर आ जाया जाये। लेकिन कहानीकार ममता कालिया जानती हैं कि भारतीय समाज में ऐसी खामखयाली ज्यादा चल नहीं सकती।

ममता का अपनी कहानी 'बोलने वाली औरत' में भी सीधा-सा प्रश्न है कि परिवार का ढाँचा सामंती और पुरुषप्रधान क्यों है? लोकतांत्रिक और लिंगनिरपेक्ष क्यों नहीं? जाहिर है इसके लिए मुँह से थूक के छींटे उड़ाना या गालियाँ देकर दिखाना जरूरी नहीं है। अपनी बात में वज़न हो तो शालीन स्वर में भी सामने वाले को कायल किया जा सकता है। यह आत्मविश्वास सिर्फ उस महिला में आ सकता है जो अपने पैरों पर खड़ी है और ऐतिहासिक द्वंद्ववाद की थोड़ी-बहुत समझ रखती है। यही चीज कहानीकार ममता कालिया को और

उनकी कहानी 'बोलने वाली औरत' को विशिष्ट बनाती है।

सुधा अरोड़ा वर्षों से स्त्रियों के लिए काम कर रही हैं और दलित-दमित-शोषित-संघर्षरत स्त्रियों के जीवन से सीधे और अंतरंगता से परिचित हैं। उनकी शुरुआत बहुत पहले धर्मयुग में प्रकाशित कहानी 'बग़ैर तराशे हुए' से हुई थी। सुधा अरोड़ा स्त्री की पीड़ा को सघनता से महसूस करती हैं और पाती हैं कि अपनी लड़ाई में स्त्री किस कदर लाचार और अकेली है। उनकी कहानियां स्त्रियों के हृदयविदारक यथार्थ से हमारा साक्षात्कार जरूर करवाती हैं लेकिन कहीं से भी पाठक की हिम्मत नहीं तोड़तीं। पढ़ने के बाद यह भरोसा बनता है कि दमित-दलित-पीड़ित-प्रताड़ित सिर्फ मैं ही नहीं, और भी हैं।

सुधा अरोड़ा की कहानी 'अन्नपूर्णा मण्डल की आखिरी चिट्ठी' एक मार्मिक कहानी है जिसमें बंगाल की एक बाला मुंबई ले आयी जाती है। वहां भी उसकी सबसे बड़ी त्रासदी यही है कि वह कोख का बोझ ढोने को विवश है और तिस पर दो बेटियों को जन्म देती है जिनके भविष्य के बारे में सोचने मात्र से उसकी असहायता की भावना दुगुनी हो जाती है। सुधा अरोड़ा की कहानियों को दमित स्त्रियों की रचनात्मक केस हिस्ट्रीज माना जा सकता है जिनका अपना एक अलग महत्व होता है।

धीरेन्द्र अस्थाना इस दशक के एक अत्यंत प्रतिभाशाली कहानीकार हैं। 'एक विचित्र देश की प्रेमकथा' और 'नींद से बाहर' जैसी रचनाएँ लिखकर उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि बदलते वक्त की नब्ज़ को वह कितनी अच्छी तरह पकड़ना जानते हैं। एक तरह से देखा जाये तो धीरेन्द्र अस्थाना की कहानियां डरानेवाली हैं। लेकिन उनमें यथार्थ कुछ भी नहीं। उनमें वही सच्चाई तार-तार उधेड़कर रख दी गयी है जिसके अस्तित्व का हमें बोध तो था लेकिन फिर भी डर के मारे जिससे अब तक हम आंखें चुरा रहे थे।

धीरेन्द्र अस्थाना की कहानी 'पिता' पढ़कर बरबस सबसे पहले ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' याद आती है, और फिर पिता पर लिखी हिन्दी की अन्य श्रेष्ठ कहानियां। ज्ञानरंजन की कहानी 'पिता' सामंती समाज व्यवस्था और पारम्परिक आदर्शवाद की विदाई और मोहभंग के समय की कहानी है जबकि धीरेन्द्र अस्थाना की 'पिता' वैश्वीकरण के भारतीय जीवन और पारिवारिक सम्बन्धों पर पड़ते प्रभाव की दारुण दास्तान है। तीनों कहानियों में एक ट्रेजिक सुर की समानता है। पिता और पुत्र एक-दूसरे के लिए अनजान, अनबूझ और अजनबी होते जा रहे हैं। जबकि दोनों नहीं चाहते कि ऐसा हो। लेकिन जो शक्तियां उनके संबंधों को प्रभावित कर रही हैं वे इतनी अमूर्त और दूरस्थ हैं कि पिता-पुत्र उनके आगे लगभग अवश हैं। यह एक बहुत समसामयिक और महत्वपूर्ण कहानी है।

मंजूर एहतेशाम इस दशक के एक महत्वपूर्ण कहानीकार हैं। 'सूखा बरगद', 'दास्ताने लापता', 'बशारत मंजिल' आदि उनके मशहूर उपन्यास हैं और एक उपन्यास के रूप में

उन्हें अधिक ख्याति मिली है, लेकिन उन्होंने बहुत अच्छी कहानियां भी लिखी हैं। यहाँ संकलित उनकी कहानी एक तरह से उनकी सिग्नेचर कहानी है। इसका नाम है 'रमजान में मौत'।

एक कहानीकार के रूप में मंजूर अपने समकालीन कहानीकारों से इस मायने में भिन्न हैं कि जहां दूसरे कहानीकार पात्रों की कहानियां लिखते हैं वहीं मंजूर माहौल और मंजर की कहानियां लिखते हैं। मंजूर की दुनिया पार्टीशन के बाद हिन्दुस्तान में रह गये मुस्लिम लोगों की दुनिया है जिनका रौब रुतबा रहीसी, ठाठ बाट, ठसक और रवायत, लताफ़त और नज़ाकत वक्त के साथ तेजी से खत्म होती जा रही है। यह एक ठहरी हुई नष्ट होती हुई दुनिया है। मंजूर जिसका नष्ट होना निहायत तटस्थ भाव से दिखा रहे हैं। नहीं मैंने गलत कहा। मंजूर तटस्थ नहीं है। बेशक वह कोई मूल्यनिर्णय नहीं कर रहे, लेकिन उस अवसाद को छिपा भी नहीं रहे जो एक खूबसूरत तामीर को जमींदोज होते देख मन में पैदा होता है। इतिहास के एक दर्दनाक नतीजे को बताती मंजूर की इस कहानी की एक दस्तावेजी अहमियत है।

नमिता सिंह हिन्दी की घोषित तौर पर पहली प्रगतिशील जनवादी महिला कथाकार हैं। हैरानी है कि उर्दू में इस्मत चुगताई आदि के बाद हिन्दी वालों को इसके लिए इतने साल इन्तजार करना पड़ा। नमिता सिंह सामाजिक मुद्दों पर और राजनीति में भी सक्रिय रही हैं और उनके पहले ही कहानी संग्रह 'राजा का चौक' ने सिद्ध कर दिया था कि यह अन्य महिला कथाकारों की तरह घर गृहस्थी की दुनिया की कहानियां नहीं हैं।

'मिशन जंगल और गिनीपिग' कुछ बड़े सवालों से जूझने वाली कहानी है। एक तरफ़ विज्ञान है जिसकी आधुनिकतम और अद्यतन उपलब्धियों पर आवाम का नहीं, पूंजीपतियों का कब्जा है जो इसका इस्तेमाल जनहित के लिए नहीं जनसंहार के लिए कर रहे हैं, दूसरी तरफ यह आशंका कि आसुरी विज्ञान की शक्तियां मानव मस्तिष्क की कोमल संवेदनाओं को नष्ट करके उसे एक रोबो या 'डिब्बाबंद मांस' बना देंगी। जाहिर है ऐसी कहानियों से निष्कर्षों की अपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रश्न उठाने में ही उनकी सार्थकता है।

कुल मिलाकर इस दशक की हिन्दी कहानी पुराने रास्ते को छोड़कर नयी राह की तलाश में निकल पड़ी कहानी है।

– **स्वयं प्रकाश**

अनुक्रम

अतिथि देवो भव

–अब्दुल बिस्मिल्लाह

गर्मी बहुत तेज थी। तीन–चार दिनों से बराबर लू चल रही थी और जगह–जगह मौतें हो रही थीं। शहर की सड़कें चूल्हे पर चढ़े तवे की तरह तप रही थीं। बड़े लोगों ने दरवाजों पर खस की टट्टियाँ लगवा ली थीं और उनके नौकर उन्हें पानी से तर कर रहे थे। दूकानों पर पर्दे गिरे हुए थे। पटरी पर बैठने वाले नाई, खोमचे वाले और लाटरी के टिकट बेचने वाले ओवर ब्रिज के नीचे पहुंच गए थे और शाम होने का इंतजार कर रहे थे। रिक्शों में लोग इस तरह दुबककर बैठते थे, मानो शरीर का कोई अंग अगर बाहर निकलेगा तो वह जल जाएगा। प्राय: सभी के रूमाल पसीना पोंछते–पोंछते काले हो गए थे। देहात के लोग तो अपने चेहरों को मोटे तौलिए या गमछे से इस तरह लपेटे हुए थे कि दूर से वे डाकू–जैसे दिखाई पड़ते थे। पैदल चलने वाले लोगों ने अपने सिर पर छाता नहीं तो अपना बैग ही रख लिया था। किसी–किसी ने तो रूमाल को ही सिर पर बांध लिया था। ठेलों पर बिकने वाला पानी पांच पैसे गिलास से बढ़कर दस पैसे के भाव हो गया था।

इस तरह गर्मी ने उस शहर की समाज–व्यवस्था और अर्थ–व्यवस्था को पूरी तरह अपनी गिरफ्त में ले लिया था। लोग आजाद होते हुए भी गुलाम थे और मजे की बात यह कि वे गर्मी का कुछ बिगाड़ नहीं सकते थे। अत: लू से बचने लिए उन्होंने अपने जेबों में प्याज की छोटी–मोटी पोलियाँ रख ली थीं और शुक्र मना रहे थे।

एक छोटा–सा प्याज सलमान साहब की जेब में भी पड़ा था। इसे उनकी बीवी ने चुपके से रख दिया था। सलमान साहब को हालाँकि इस बात का पूरा पता था, पर

वे यही मानकर चल रहे थे कि प्याज के बारे में उन्हें कुछ भी नहीं मालूम। और अपने इस विश्वास पर वे डटे हुए थे कि लू का प्याज से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

सलमान साहब अपना सूटकेस उठाए छन्-छन् करती सड़क पर बढ़े जा रहे थे, हालाँकि उनकी इच्छा हो रही थी कि अपने सिर पर औरों की तरह वे भी रूमाल बांध लें या तौलिया निकालकर चेहरे के इर्द-गिर्द लपेट लें, पर असुविधा के ख्याल से वे ऐसा नहीं कर पा रहे थे। इसके अलावा उन्हें इस बात की उतावली भी थी कि जल्दी से वे मिश्रीलाल गुप्ता के निवास पर पहुंच जाएं। रिक्शा उन्हें मिला नहीं था, अत: अपने मन को वे यह भी समझाते जा रहे थे कि स्टेशन से उसका कमरा ज्यादा दूर नहीं है। यह बात मिश्रीलाल ने ही उन्हें बताई थी।

सलमान साहब मिश्रीलाल गुप्ता से मिलने पहली बार उस शहर में पहुंचे थे। मकान नम्बर तो उन्हें याद था, पर सिचुएशन का पता नहीं था। लेकिन उन्हें पूरा विश्वास था कि वे मिश्रीलाल गुप्ता को अवश्य ही ढूँढ़ लेंगे।

मिश्रीलाल गुप्ता सलमान साहब के पड़ोस का एक ऐसा लड़का था जो कस्बे-भर में अपने क्रान्तिकारी विचारों के कारण मशहूर था। गुप्ता-खानदान का वह पहला युवक था जिसने मांस खाना आरम्भ कर दिया था और मुसलमान होटलों में चाय पिया करता था। जी हाँ, जिस तरह बनारस का विश्वविद्यालय हिन्दू है और अलीगढ़ का विश्वविद्यालय मुसलमान, ठीक उसी तरह उनके कस्बे के होटल भी हिन्दू और मुसलमान थे। यह बात अलग है कि हिन्दू होटलों में मुसलमानों के लिए या मुसलमान होटलों में हिन्दुओं के लिए प्रवेश की कोई मनाही नहीं थी, फिर भी जो धार्मिक लोग थे, वे इसे बुरा समझा करते थे। सलमान साहब के पड़ोसी जैकी साहब हमेशा मुसलमान हलवाई के यहां से ही मिठाई मँगवाते थे, क्योंकि शिवचरण हलवाई जो था, वह इस्तिजे से नहीं रहता था।

उस कस्बे में उन दिनों एक ही स्कूल था और वहां सबको अनिवार्य रूप से संस्कृत पढ़नी पड़ती थी, अत: सलमान साहब ने भी 'राम:, रामौ, रामा:' पढ़ा, और नतीजा यह निकला कि वे उर्दू नहीं पढ़ सके! जैसे मिश्रीलाल के बाबा गिरधारीलाल गुप्ता अपने जमाने में सिर्फ उर्दू ही पढ़ सके थे, संस्कृत सीखने का मौका उन्हें नहीं मिला था। एक तो वैश्य, दूसरे मदरसे में उसका प्रबन्ध नहीं था। सो, इसी किस्म की मजबूरियों ने सलमान साहब से संस्कृत पढ़वाई और जब वे उच्च शिखा लेने के लिए शहर पहुंचे तो वहां भी उन्होंने संस्कृत ही पढ़ी। उन्हें विश्वास था कि एम०ए० करने के बाद वे कहीं-न-कहीं संस्कृत के लेक्चरर हो जाएँगे, पर ऐसा नहीं हुआ और अब वे

अपने ही कस्बे के नये-नये खुले इस्लामिया मिडिल स्कूल में हिस्ट्री पढ़ाने लगे थे।

मिश्रीलाल जिन दिनों इंटर कर रहा था, सलमान साहब ने उसे सुबह-शाम संस्कृत पढ़ाई थी, अत: वह उन्हें अपना गुरु मानता था और चरण छूता था। अब वह बी०ए० कर चुका था और किसी कम्पीटीशन की तैयारी कर रहा था। उसकी प्रबल इच्छा थी कि सलमान साहब जब उसके शहर में आएँ तो उसके निवास पर अवश्य पधारें। मिश्रीलाल की इस इच्छा को अनपेक्षित रूप से पूर्ण करने के लिए ही वे बगैर सूचना दिए उस शहर में पहुंच गए थे। अचानक उसके दरवाजे पर दस्तक देकर उसे चौंका देना चाहते थे।

सलमान सहब ने मुहल्ले का नाम याद किया-गोपालगंज। हाँ, यही नाम है। मकान नं० बी-पाँच सौ बासठ। राधारमण मिश्र का मकान। स्टेशन से यही कोई आध मील पर स्थित।

''क्यों भाई साहब, गोपालगंज किधर पड़ेगा?'' उन्होंने एक दूकानदार से पूछा तो पान की पीक थूकने का कष्ट न करते हुए उसने गलगलाकर यह बताया कि वे महाशय थोड़ा आगे निकल आए हैं। पीछे मुड़कर बिजली के उस वाले खेमे से सटी हुई गली में घुस जाएँ।

सलमान साहब उसकी दूकान के शेड से जब बाहर निकले तो लू का एक थपेड़ा चट्ट से उनके गाल पर लगा और उन्होंने अपनी एक हथेली कनपटी पर लगा ली। ठीक उसी वक्त उन्हें अपनी जेब में पड़े हुए प्याज का भी खयाल आया और क्षण-भर को वे आश्वस्त हुए। हां, यही गली तो है। उन्होंनें बिजली के खम्भे को ध्यान से देखा और गली में घुस गए।

दाहिनी ओर ए ब्लाक था। सलमान साहब ने सोचा कि बाईं ओर जरूर बी ब्लाक होगा, पर उधर एच ब्लाक था। वे और आगे बढ़े, शायद ए वाली साइड में ही आगे चलकर बी पड़े। लेकिन नहीं, जहाँ ए खत्म हुआ वहाँ से एम शुरू हो रहा था। बाईं ओर सी था। वे चकरा गए।

''कहाँ जाना है?'' एक सज्जन सड़क पर चारपाई निकालकर उसे पटक रहे थे और नीचे गिरे हुए खटमलों को मार रहे थे। उन्होंने उनकी बेचैनी को शायद भांप लिया था। सलमान साहब ने खुद अपने जूते से खटमल के एक बच्चे को मारा और पूछा, ''यह बी-पाँच सौ बासठ किधर पड़ेगा?''

''ओह, मिसिर जी का मकान? पह पुराने गोपालगंज में है। आप इधर से चले

जाइए और आगे चलकर मन्दिर के पास से दाहिने मुड़ जाइएगा। वहाँ किसी से पूछ लीजिएगा।'' सलमान साहब ने उन्हें धन्यवाद दिया और चल पड़े। मन्दिर के पास पहुँचकर जब वे दाहिनी ओर मुड़े तो उन्होंने देखा कि पीछे चार-पांच भैंसे बँधी हैं और एक लड़की अपने बरामदे में खड़ी होकर दूर जा रहे चूड़ीवाले को बुला रही है।

''पुराना गोपालगंज क्या यही है?'' उन्होंने उस लड़की से ही जानकारी लेनी चाही, पर उसने उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका सारा ध्यान चूड़ीवाले के ठेले पर लगा हुआ था। सलमान साहब आगे बढ़ गए।

थोड़ा और आगे जाने पर पुराने ढंग के ऊँचे-ऊँचे मकान उन्हें दिखाई पड़े, जिनकी छाया में उस इलाके की सँकरी सड़कें अपेक्षाकृत काफी ठंडी थीं और नंग-धड़ंग बच्चे उन पर उछल रहे थे। सलमान साहब का मन हुआ कि यहाँ वे क्षण-भर के लिए खड़े हो जाएँ, पर अपने इस विचार का उन्होंने तुरन्त ही परित्याग किया और चलते रहे।

सामने एक लड़का दौड़ा आ रहा था। उसके पीछे-पीछे एक मोटा-सा चूहा घिसटा आ रहा था। लड़के ने चूहे की पूँछ में सुतली बाँध दी थी और उसका एक छोर थामे हुए था। सलमान साहब को देखकर-जैसी कि उन्हें उम्मीद थी-वह बिल्कुल नहीं ठिठका और उनकी बगल से भागने के चक्कर में उनसे टकरा गया।

''ये बी-पाँच सौ बासठ किधर है जी? तुम्हें पता है, मिश्रजी का मकान?''

लड़के ने उनकी ओर उड़ती-सी नजर डाली और एक मकान की ओर संकेत करता हुआ भाग गया। उसके पीछे-पीछे चूहा भी घिसटता हुआ चला गया।

सलमान साहब ने एक ठंडी साँस ली और उस विशालकाय इमारत के सामने जाकर खड़े हो गए। वहाँ बाहर की दो औरतें चारपाई पर बैठी थीं और पंजाब-समस्या को अपने ढंग से हल करने में लगी हुई थीं-

''अरी बिट्टन की अम्माँ, वो तो भाग मनाओ कि हम हिन्दुस्तान में हैं, पंजाब में होतीं तो न जाने क्या गत हुई होती....।''

''राधाचरण मिश्रजी का मकान यही है?''

स्त्रियाँ चारपाई पर बैठी रहीं, जबकि सलमान साहब ने सोचा था कि वे उठ खड़ी होंगी-जैसा कि उनके कस्बे में होता है-लेकिन यह तो शहर है....

''मिसिर जी यहाँ नहीं रहते। वे जवाहर नगर में रहते हैं। यहाँ सिरिफ उनके

किराएदार रहते हैं।'' एक स्त्री ने उन्हें जानकारी दी और खामोश हो गई।

''क्या काम है?'' दूसरी ने पूछा और अपना सिर खुजलाने लगी।

''उनके मकान में एक लड़का रहता है मिश्रीलाल गुप्ता, उसी से मिलना था।''

''ऊपर चले जाइए, सीढ़ी चढ़कर दूसरा कमरा उन्हीं का है।'' उस सिर खुजलाने वाली औरत ने बताया और खड़ी हो गई।

सलमान साहब भीतर घुस गए।

वहाँ अंधेरा था और सीढ़ी नजर नहीं आ रही थी। थोड़ी देर तक खड़े रहने के बाद उन्हें कोने में एक नल दिखाई पड़ा, फिर सीढ़ी भी दिखने लगी और वे संभल-संभलकर ऊपर चढ़ने लगे।

इस बीच उन्होंने अनुमान लगाया कि मिश्रीलाल सो रहा होगा और दरवाजा खटखटाकर उसे जगाना पड़ेगा। वह हड़बड़ाकर उठेगा और सिटकिनी खोलकर आंखें मलते हुए बाहर देखेगा। फिर सामने उन्हें पाकर चरणों पर झुक जाएगा।

''कौन?''

सीढ़ियाँ खत्म होते ही इस पार से किसी स्त्री का प्रश्न सुनाई पड़ा और वे ठिठक गए।

''मिश्रीलाल जी हैं क्या?''

''थोड़ा ठहरिए।''

उस स्त्री ने जरा सख्ती के साथ कहा और सलमान साहब को लगा कि स्त्री किसी महत्वपूर्ण काम में लगी हुई है। वे बिना किवाड़ों वाले उस द्वार के इस पार खड़े हो गए और कुछ सोचने लगे। तभी उन्होंने देखा कि अधेड़ वय की गोरी-सी औरत मात्र पेटीकोट और ब्रेसियर पहने बरामदे से भागकर सामने वाली कोठरी में घुस गई और जल्दी से साड़ी लपेटकर ब्लाउज का हुक लगाते हुई बाहर निकल आई।

''आइए!''

उसने सलमान साहब को पुकारा तो वे इस प्रकार भीतर घुसे, जैसे उन्होंने उस स्त्री को अभी थोड़ी देर पहले भीतर घुसते हुए देखा ही नहीं। स्त्री ने भी शायद यही सोचा और इत्मीनान से खड़ी रही।

सलमान साहब ने देखा कि बरामदे में बने परनाले के मुहाने पर एक उतरी हुई गीली साड़ी है और जय साबनु की गंध पूरे माहौल में भरी हुई है।

''मिश्रीलाल जी बगलवाले कमरे में रहते हैं, पर वे हैं नहीं।'' सुबह से ही कहीं गए हुए हैं। आप कहाँ से आ रहे हैं? बैठिए।''

स्त्री ने अत्यन्त विनम्रता के साथ यह सब कहा और एक बंसखट बिछाकर फिर भीतर घुस गई। थोड़ी देर बाद वह एक तश्तरी में गुड़ और गिलास में पानी लिए हुए बाहर आई और बंसखट पर तश्तरी रखकर खड़ी हो गई।

''पानी पीजिए, आज गर्मी बहुत है।''

इतना कहकर उसने अपनी उतारी हुई साड़ी की ओर देखा और न जाने क्या सोचकर पानी रखकर फिर भीतर घुस गई। अबकी वह ताड़ का एक पंखा लेकर लौटी और उसे भी बँसखट पर रख दिया।

सलमान साहब ने गुड़ खाया, पानी पिया और पंखा लेकर उसे हल्के-हल्के डुलाने लगे। ''मिश्रीलाल कहीं बाहर तो नहीं चला गया है?''

''बाहर तो नहीं गए हैं, शहर में ही होंगे कहीं। पिक्चर-विक्चर गए होंगे, या किसी दोस्त के यहाँ चले गए होंगे। रोज तो कमरे में ही रहते थे, आज ही निकले हैं बाहर।''

सलमान साहब ने घड़ी देखी, तीन बज रहे थे। उन्होंने थकान का अनुभव किया और बंसखट पर थोड़ा पसर गए।

स्त्री फिर भीतर से तकिया ले आई।

''आप थोड़ा आराम कर लें, गुप्ताजी शाम तक तो आ ही जाएँगे।'' स्त्री ने उनके सिरहाने तकिया रखा और अपनी गीली साड़ी बाल्टी में रखकर नीचे उतर गई।

सलमान साहब जब लेटे तो जेब में पड़ा प्याज उन्हें गड़ने लगा और उन्होंने उसे बाहर निकालकर चारपाई के नीचे गिरा दिया। थोड़ी देर बाद उन्हें नींद आ गई।

नींद में उन्होंने सपना देखा कि उनके स्कूल में मास्टरों के बीच झगड़ा हो गया है और पी०टी० टीचर सत्यनारायण यादव को हेड मास्टर साहब बुरी तरह डाँट रहे हैं। सलमान साहब उनका पक्ष लेकर आगे बढ़ते हैं तो सारे मास्टर उन पर टूट पड़ते हैं। उनकी नींद टूट जाती है।

वे उठकर बैठ जाते हैं।

लगता है, रात हो गई है। भीतर एक मटमैला-सा बल्ब जल रहा है, जिसकी रोशनी बरामदे में भी आ रही है। बरामदे में कोई बल्ब नहीं है। भीतर से आनेवाली रोशनी के उस चौकोर-से टुकड़े में ही एक स्टोव जल रहा है और स्त्री सब्जी छौंक रही है। जहाँ दोपहर में जय साबुन की गन्ध भरी हुई थी, वहीं अब जीरे की महक उड़ रही है।

''मिश्रीलाल नहीं आया अभी तक?''

''अरे, अब हम क्या बताएँ कि आज वे कहाँ चले गए हैं? रोजाना तो कमरे में ही घुसे रहते थे।''

''उस स्त्री ने चिन्तित मन से कहा और स्टील के एक गिलास में पहले से तैयार की गई चाय लेकर उनके सामने खड़ी हो गई।''

''अरे, आपने क्यों कष्ट किया?''

''इसमें कष्ट की क्या बात है? चाय तो बनती ही है शाम को?''

सलमान साहब ने गिलास थाम लिया। स्त्री स्टोव की ओर मुड़ गई।

तभी एक सद्य:स्नात सज्जन कमर में गमछा लपेटे, जनेऊ मलते हुए सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर आए और कमरे में घुस कर हनुमान-चालीसा का पाठ करने लगे। जीरे की महक के साथ-साथ अब अगरबत्ती की महक भी वातावरण में तिरने लगी।

सलमान साहब ने भीतर झाँककर देखा तो पाया कि उस कमरे में पूरी गृहस्थी अत्यन्त सलीके के साथ सजी हुई थी और दीवारों पर राम, कृष्ण, हनुमान, कृष्ण, शंकर पार्वती, लक्ष्मी और गणेश आदि विभिन्न देवी-देवताओं के फोटो टँगे हुए थे। वहीं एक ओर लकड़ी की एक तख्ती लगी थी, जिस पर लिखा था-राममनोहर पांडेय, असिस्टेंट टेलीफोन ऑपरेटर। वे सज्जन अपने दाहिने हाथ में अगरबत्ती लिए, बायें हाथ से दाहिने हाथ की टिहुनी थामे सभी तस्वीरों को सुगन्धित धूप से सुवासित कर रहे थे और बीच-बीच में गीता के कुछ श्लोक भी सही-गलत उच्चारण के साथ बोल जाते थे। छत पर एक गन्दा-सा पंखा अत्यन्त धीमी चाल से डोल रहा था।

स्त्री ने सब्जी पका ली थी और अब वह रोटियाँ बना रही थी। सलमान साहब की इच्छा हुई कि अब वे वहां से चल दें और किसी होटल में ठहर जाएं, सुबह आकर मिश्रीलाल से मिल लेंगे, क्योंकि रात काफी होती जा रही है और उसका अभी तक पता नहीं है। वे खड़े हो गए।

''मैं अब चलता हूं, कल सवेरे आकर मिल लूंगा।''

उन्होंने अपना बैग उठा लिया।

''कहाँ जाएँगे?'' स्त्री ने उनसे सीधा सवाल किया और पीछे मुड़कर उनकी ओर ताकने लगी।

''किसी होटल में रुकूंगा।''

''क्यों भाई साहब, होटल में क्यों रुकिएगा, क्या यहां जगह नहीं है? खाना तैयार हो गया है, खा लीजिए और छत पर चलकर लेटिए, रात में गुप्ता जी आ ही जाएंगे। और अगर न भी आएँ तो सुबह चले जाइएगा। इस टाइम तो मैं आपको न जाने दूंगी। आइए, जूता-वूता उतारिए और हाथ-मुँह धोकर खाने बैठिए।''

''नहीं भाभीजी, आप क्यों कष्ट उठाती हैं?''

उस स्त्री को अब भाभी कहने में कोई हर्ज नहीं लगा सलमान साहब को।

''कष्ट की क्या बात है? आइए, खाना खाइए?''

सलमान साहब विवश हो गए। उन्होंने जूते उतारे और हाथ-मुँह धोकर खड़े हो गए। अब तक पांडेय जी अपनी पूजा-अराधना से खाली हो गए थे और भीतर बिछी चौकी पर बैठकर कुछ कागज-पत्तर देख रहे थे। सलमान साहब को उनसे नमस्कार करने तक का मौका अभी नहीं मिला था। यह उन्हें बहुत खल रहा था। लेकिन अब इतनी देर बाद नमस्कार करने का कोई औचित्य भी नहीं था, इसलिए उन्होंने सीधे-सीधे बात करने की कोशिश की।

''भाई साहब, आप भी उठिए।''

''नहीं, आप खाइए, मैं थोड़ी देर बाद भोजन करूँगा।''

उन्होंने तनिक शुष्क स्वर में सलमान साहब को उत्तर दिया और बगैर उनकी ओर देखे अपने कागज-पत्तर में उलझे रहे।

''आप बैठिए, दिन-भर के भूखे-प्यासे होंगे। वे बाद में खा लेंगे। दफ्तर से आकर उन्होंने थोड़ा नाश्ता भी लिया है। आप तो सो रहे थे।''

स्त्री ने एक बार फिर आग्रह किया और पीढ़ा रखकर थाली लगा दी। लोटे में पानी और गिलास रख दिया।

सलमान साहब बैठ गए।

वे भीतर से बहुत आह्लादित थे। उनके कस्बे में ऐसा नहीं हो सकता कि बगैर जाति-धर्म की जानकारी किए कोई ब्राह्मण किसी को अपने चौके में बैठाकर खाना खिलाए, लेकिन शहर में ऐसा हो सकता है। यद्यपि यह कोई बड़ा शहर नहीं है और

यहां के लोग भी बहुत कुछ ग्रामीण संस्कारों वाले हैं, पर है तो आखिर शहर। यहाँ के पढ़े-लिखे लोग प्रगतिशील विचारों के होते हैं। उनमें संकीर्णता नहीं होती। वे धर्मप्रवण होते हुए भी रूढ़ धारणाओं से मुक्त होते हैं।

सलमान साहब सोच रहे थे और खा रहे थे। उन्हें बैंगन की सब्जी बहुत अच्छी लग रही थीं। ताजे आम का अचार यद्यपि पूरा गला नहीं था, पर स्वादिष्ट था। रोटियों पर घी भी चुपड़ा हुआ था। ऐसी रोटियां उनके घर में नहीं बनतीं। वहां तो उलटे तवे पर बनी हुई विशालकाय और अर्धसंकी चपातियां किसी पुराने कपड़े में लिपटी रखी होती हैं....

स्त्री ने एक फूली हुई, भाप उड़ाती रोटी उनकी थाली में और डाल दी थी।

''आप गुप्ता जी के गाँव से आए हैं?''

सलमान साहब ने सिर उठाया। पांडे जी अब कागज-पत्तरों से खाली हो गए थे और आम काट रहे थे। उनकी आवाज में उसी तरह की शुष्कता विद्यमान थी।

''जी हाँ!'' सलमान साहब ने जवाब दिया और अचार उठाकर चाटने लगे।

पांडे जी ने संकेत से पत्नी को भीतर बुलाया और आम की तीन फाँकिया थमा दीं।

स्त्री ने उन्हें सलमान साहब की थाली में डाल दिया।

''आप उनके भाई हैं?'' फिर वही शुष्क स्वर।

सलमान साहब को कोफ्त हुई।

''जी नहीं, वह मेरा शिष्य है।''

''क्या आप अध्यापक हैं?''

''जी हाँ।''

''कहाँ पढ़ाते हैं?''

''आप भी गुप्ता हैं?''

''जी नहीं।''

''ब्राह्मण हैं?''

''नहीं, मैं मुसलमान हूँ, मेरा नाम मुहम्मद सलमान है।''

उन्होंने अपने पूरा परिचय दिया और रोटी के आखिरी टुकड़े में सब्जी लपेटने

लगे।

पांडे जी ने अपनी स्त्री की ओर आँखें उठाईं तो पाया कि वह खुद उनकी ओर देख रही थीं। ऐसा लगा कि दोनों ही एक-दूसरे से कुछ कह रहे हैं, पर ठीक-ठीक कह नहीं पा रहे हैं।

सलमान साहब अगली रोटी का इन्तजार कर रहे थे, लेकिन स्त्री स्टोव के पास से उठकर भीतर चली गई थी और कुछ ढूंढने लगी थी।

सलमान साहब आम खाने लगे थे।

स्त्री जब बाहर निकली तो उसके हाथ में कांच का एक गिलास था और आंखों में भय।

उसने सलमान साहब की थाली के पास रखा स्टील का गिलास उठा लिया था और उसकी जगह काँच का गिलास रख दिया था।

सलमान को याद आया कि अभी शाम को जिस गिलास में उन्होंने चाय पी थी, जिस थाली में वे खाना खा रहे थे, वह स्टील की ही थी। पल-भर के लिए वे चिन्तित हुए। फिर उन्होंने अपनी थाली उठाई और परनाले के पास जाकर बैठ गए। गुझना उठाया और अपनी थाली माँजने लगे।

स्त्री ने थोड़ा-सा पीछे मुड़कर उनकी ओर देखा, लेकिन फिर तुरन्त बाद ही वह अपने काम में व्यस्त हो गई।

मिश्रीलाल अभी तक नहीं आया था।

अब्दुल बिस्मिल्लाह

जन्म : जुलाई, 1949

प्रमुख कृतियाँ : झीनी झीनी चदरिया (उपन्यास) कितने कितने सवाल (कहानी संग्रह) छोटे बुतों का बयान (कविता)

आवाज की अरथी

—आलमशाह ख़ान

सूरज ढले छग्गी पोखर टोले पहुँची थी। धनुष की ढब मुड़ी बाँस की खपच्चियों पर सधी अपनी झुग्गी के सामने, कंधे पर झूलते तार के छींके-पिंजरे पटक कर उसने हाथ झटक दिया। फिर ओछे हाथ को पूरे हाथ से सहलाकर सामने देखा-नरसिंघा मरी चाल से बढ़ा आता था। उसके कंधे पर टिकी सोटी पर रबर के डोरे में बँधे तोता-मैना सटे हुए डोल रहे थे। उसे लगा भोर को जितने तोता-मैना थे, उतने ही अब भी हैं। एक कड़ुवाहट उसके सूखे गले में उतर गई।

पोखर की पुलिया पर बैठे फन्ने ने दोनों माँ-बेटों को झुग्गी के सामने जो देखा तो लकड़ी के सहारे टाँग उछालता उनके पास चला आया। थोड़ी देर चुपचाप रहा। छींके-पिंजरे और कागजी तोता-मैना के ढेर को देखकर उसने दोनों आँखें तरेर कर घूरा और बिना कुछ बोले झुग्गी के सिरे पर बिखरे अधबने खिलौनों को झल्ला कर एक ठो करने लगा। फिर एकाएक सामने पड़े खिलौनों और छींके-पिंजरों को दोनों के सर पर मार गालियाँ बकने लगा।

''अब और पिंजरे-खिलौने बनाकर तुम दोनों के बापों को उसमें धरूँ-बहलाऊँ?''

''अरे! कुल्लाय क्यूँ है, इन छींके-पिंजरों पर कोई हाथ न धरे तो मैं क्या करूँ? किसी के गले बाँध दूँ इन्हें?''

''...तू न बँध जा किसी के गले? इधर को गला फाड़ती, बस्ती-बाजार में बोल नी फूटता के ले लो छींका-पिंजरा...''

''अरे दिन भर बोला...गला फाड़ा पर कोई आँख न उठी। एक बाबू ने देखा,

बोला, 'घरवाली पसंद करे तो ले डालूँ'... घर तक ले गया पर घरवाली थी कहाँ? लंडूरा था। मुझे ही बुलाने लगा घर में।''

''...फिर क्या?' थूककर पलट आई।''

''...वा रे सती! सावतरी! थोड़ी पसर लेती तो कौन रूप ढल जाता?''

''...मरद है कि सूकर?...लाज कर।''

''...ओ लजवंती! जो सोईं नहीं आज तक इधर-उधर?''

''...मूँडकटे! मर, तेरे जैसे मरभूखे मेरे बाप ने ही इधर-उधर किया मुझे। बस, अपने मन से तो मूता भी नी तेरे मूँ में।''

''...पूतनी है। सिकल देखी पोखर में? चमड़मढ़ी ठट्ठर, बजाओ तो ढब-ढब...बने हैं रसीली...खुसक पोखरी, बिछी जरूर होगी वहाँ, ऐंठा होगा कुछ, यहाँ चलित्तर दिखा रही। दिखा अंटी?''

''...ले देख अपनी माँ भेण का'', कहते हुए उसने दो हाथ का लीतरा ही नहीं, फटियल चोली तक उतार फेंकी। भन्नाती हुई बोली, ''ओर दिखाऊँ तेरे को तेरी जनम-जगा?''

''...अरी! परा समेट रूप अपना? बालक देखेंगे तो खौफा जाएँगे। कोई मरद जो यें देखेगा तो मरदानगी मर जाएगी उसकी।''

''...तू तो मरदुआ नहीं? मेरे को देख, तेरा मरद तो मर ही गया। खोदी है, जो खोदेगा नहर। भोथरा भट्टा मरद बने हैं।''

''री मा! खों-खों ही करेगी या खाने का जुगाड़ भी बैठायगी? भूख लगी है।'' नरसिंघा चुप दोनों की बतभेड़ देख रहा था; अब बोला।

''ले खिला खसम को अपना मूँड।''

''खसम होगा तेरी भेण का, मेरा तो बेट्टा है।''

''बता, अपने बाप की माँ के खसम! कित्ता लाया? तोता-मैना तो जूँ ही बैठे हैं तेरी माँ की मुँडेर पे'' फन्ने ने नरसिंघा से पूछा।

''बप्पा! अब तो इन कागज के तोता-मैना को कोई ना पूछे। पिलास्टिक के खिलौने ला दे, वो बेच लूँगा। उसने खीसे झाड़ कर कुछ सिक्के सामने धर दिए।

''मर साले पिलास्टीक गयी तेरी माँ की पोपली पेंदी में'', उसने तोते गिनते हुए

कहा, ''अरे! जे तो आठ हैं, मैना पंदरा और गुलदस्ते तो जो के जो हैं। पैसे कित्ते हैं।'' नब्बे, कुल? मा-खोर! बीस में से आठ बचे। बारा तोतों के एक बीस तो जे ही हुए और मैना के पचास अलग; कुल एक सित्तर का बेच हुआ - दे, बाकी किधर को?''

''पचास की पोस्त और...''

''और क्या, बाकी माँ के यार को चटा दिए?''

दूँ एक झाप, बता?''

''एक चा और पाँच की मूँगफली।''

''कंजर कूँ हजार बार बोला, दो का बिकरा हो तो 'चा' पिया कर।'' फन्ने ने तन्ना कर एक थप्पड़ नरसिंघा को जमा दिया।

''कसाई क्यूँ मारे है? दिन भर भूखा डोला, एक चा पी ली तो कौन तेरी कुँआरी भेण का दूध पी गया?''

''आये छिनलिया! चुप कर, इसने अपनी ही कुँआरी माँ का दूध पिया है, नी तो...बारा बजे से, तेरा बाप बाबू लोगों के कैंटिन के पास डोलता रहा। जूठन-फेंकन से पेट भरा...साँझ को फिर आ गया ठूँसने। मेरी झुग्गी में अब तुम दोनों के लिए कोई ठौर नहीं। मरो पल्ले कोने में। फन्ने ने बीड़ी सुलगाई और धौंकने लगा। रुक कर बोला, ''अब आना बेट्टे पोस्त पीने!''

''मैंने हजार टेम बोला तेरे कूँ, इस लौंडे को पोस्त की लत मत डाल...'' छग्गी उफन कर बोली।

''पोस्त की लत न हो तो, बेट्टा कल ही भाग खड़ा होगा। इसी से बँधा हेगा।''

''ओ नीच! तो जूँ पाल रखा है मेरे नरसिंघे को?''

''नी, तो तेरे रूप पे रीझा था? इसी खूँटे के बल तेरे को गले बाँधा था, नी तो तू है कौन? समझ ले अब इसी लौंडे-लीतरे पर चलेगी तेरी रोटी।'' तीनों के बीच चुप्पी तनी रही। थोड़ी देर बाद छग्गी ने आगे हाथ बढ़ा फन्ने के मुँह से बीड़ी झपट ली और सुट्टे लगाते हुई बोली, ''ले ये डेढ और ले आ अद्धा।'' उसने चोली के गूमड़ में से गाँठ निकाली।

''कब से सहेज रखे हैं?'' फन्ने के गुंजल चेहरे पर तनाव रुका और बिला गया, बोला, ''तो ले लौंडे, पोस्त तोड़ और भिगो, आया मैं'' और वह लकड़ी के सहारे लँगड़ी टाँग उचकाता उठ खड़ा हुआ।

* * *

सूखे-भीगे, झाड़-झक्खड़ भरे, तपते-ठिठुरते बरसते-रिसते उनके दिन और रात वहीं पोखर में खपते थे। वहीं बच्चे जनमते, किलकिलाते, बिलबिलाते, बढ़ते और किसी को अपने बेहाल-बेघर होने का गुमान तक न होता। पर इस बार पूस, ठंडी आग बखेरता आया। ठंडी के साथ बेधने वाली बयार उनके कंकाल को खँगाल गई। बूढ़े कँपकँपाने लगे। टाबर दाँत किटकिटाते, बड़े-मोटियार झुरझरी नहीं झेल सके और नन्हें तो लंबे ही हो गए।

वैसे अनोखा-अनभोगा कुछ भी नहीं था। ऐसे मौसम पहले भी आये थे और ठसक बता बीत गए थे। पर इधर जब से रैन-बसेरों की बात पोखर टोले में चली, तभी से सब एक ठौर जुड़े थे और रातें उधर ही रैन-बसेरा में काटने की ठानी थी।

रैन-बसेरे में आज पहली ही रात काटकर टोले के भाइले-भाइयों और मा-भैणों ने आँखें खोली थीं। बसेरे के फेराव में उन्हें अजीब-सा लगा, जैसे दूजे देस नहीं दूजे लोक आ गए हों।

पेटी में बंद मुर्गे की बाँग के साथ ही टोले में तू-तू मैं-मैं, रोना-पीटना मच जाता था। यही उनके जीने-जागने की पहचान थी। आदमी लुगाई के झोंटे नोचते, लुगाई मरद की मूँछ उखाड़ लेती थी और फिर एक-दूसरे की आसकी-मासकी बखानी जाती।

''तू तेरे भेण के मरद के साथ सोई।''

''तूने तेरी भौजी संग मूँ काला किया।''

''तू चोर।''

''तू छिनाल।''

''तेरा बाप धाड़वी।''

''तेरी माँ के चलित्तर देखे।''

''ये मेरा मूत नी तेरे भाई का तुखमा।''

''ऐ, लाज मर, में नी बोल दूँ, तेरा मूत तेरी भेण की कोख।''

''ओ चंडिये।''

''ओ रंडुए।''

''खसमखानी, आदमखोर।''

''लुगाई का रज पी ली, नीच।''

पोखर टोले में यही सब चलता। फिर साँझ को जुटाए फूस-फाचर, कागज-कूड़ा, टहनी-ठूँठे धधकते, बीड़ियाँ सुलगतीं। रात के भीगे पोस्त के छिलके आग पर धरे काले-कठियाए डिब्बे में खौलते, खुदबुदाते, फिर चीकट धोती के छोर से छन-छनाकर टूटे हैंडिल के मगों में ढल जाते। पोस्त की गंधियाई भाप में वे एक-दूसरे का मुँह जोहते और कभी चहक और कभी अनबोले बोल के साथ उसके अपने सूखे गले की घाटी में उडेंल लेती। आकाश की काली टूटकर जब उनके आँखों के डोरों में बस जाती तो वे पोखर-पुलिया से सूरज का चढ़ना देखते। बूढ़े-बड़े मोटियार, नाले पर खड़े चायवाले सिंधी के खोखे के आगे जा बैठते। फिर बोल के गोल फूटते, फिर झंझट-झग्गड़ होता। हाथापाई तक की नौबत आ जाती। किसी को अजब नहीं लगता। सब जानते थे, ये रोज होता है। लोग देखकर भी अनदेखे निकल जाते। चाय की सुड़क के साथ फिर खों-खों होती, फिर दाँतों में बीड़ियाँ दबा टोली बिखर जाती, रोजी-रुजगार के लिए। किसी के कंधे पर टीन के कनस्तर पीटने, ठीक करने के औजारों की पेटी झूलती, किसी के सर पर चीनी-काँच के बरतन और फटे-जूने कपड़े होते। कोई कागज-गत्ते के खिलौने लिए होता। दिन में कभी-कभार मिलना होता, साँझ पड़े फिर जुड़ते...फिर जिंदगी बजने लगती।

''तू पी आया कमाई, तेरा चाँचर राँधूँ?''

''तू खा आई कबाब-कचालू, अब खा गू-गोबर।''

''मूँडकटी मा को, बीड़ी-चा चटानी थी तो उसी के संग सोता; राँड क्यूँ लगाई गले?''

''बाप बूढ़ल के मूँ में दारू क्यों मूता?'' जा उसी से अपनी टाँग गरमा।''

''मूत हरामी का दूध मेरा,'' बोल के साथ कोई माँ चिथयाई छाती ठूँस बच्चे को धबक देती।

रात के बसियाए गले में, भोर-किरन के पथराए जाने पर भी जब पोस्त-रस न उतरा तो रैन-बसेरे में ही बकझक की झड़ी लग गई। आज वे सरकार और नेताओं के माँ-बापों को बखान रहे थे। उनसे रिश्ता-नाता जोड़कर चिल्ला रहे थे- बस एक टटरा गोदाम सा खोल दिया और बकरों-बैलों की जूँ भर दिया सबको। चा-पानी कुछ भी नहीं। कोई नौ बजे प्रबंधक जी आये तो कुहराम मचा था। गंदगी अलग। सब देख-

सुनकर उन्होंने माथा पीट लिया और पोखर टोले वालों को निकाल बाहर किया। वे बकझक करते, गालियाँ उछालते रैन-बसेरे से बाहर आ गए।

* * *

साँझ घिरे पोखर टोले ने आज फिर साँस ली। उखड़े बाँस-खपच्चियाँ फिर खड़े हुए थे और टीन-टाट ने तनकर बित्ते-भर जमीन को आकाश की छाँव से काट दिया था। दस-बीस झुग्गियाँ फिर उभर आई थीं जैसे-तैसे पहर बिलमायों भोर हुए, फिर जुगत जुड़ी। और दिनों की चलते आज चिल्ल-पों कम थी। बीड़ी के सुट्टों से खोलियों में धुआँ अटा जा रहा था।

''खेल-खिलौने कोई लेवे नी, छींके, पिंजरों के दिन गए। अब जूँ कैसे चलेगा?'' छग्गी ने अपनी छठी अंगुली चटकाते हुए कहा। ''अपना तो टेम टल गया, नरसिंघा बिन खाए नहीं रेणे का।''

''तू करे ना कोई जुगाड़? तेरे तो बीस ऊपर एक उँगली है।''

''जासती उंगली दीख रही है। भगवान् ने जो दो की ठौर डेढ़ ही हाथ दिया वो दीदे में नी आता। ''उसने अपने ठँठे से हाथ को नचा कर कहा।

''किचकिचाने का टैम नी। छोकरे को मना ले, सब फिर चल जाएगा।''

''छोकरे को क्या करना बोल?'' उसने गूदड़ी में पड़े नरसिंघा के धूसर बालों में अंगुलियों से कंघी करते हुए पूछा।

''इसे करना कुछ नी...बस बजरंग बली बनना है।''

''बजरंगबली...हनुमान?''

''ऐसे पूछ री है जूँ हिंदू नी, तुरक हो।''

''बोल भी कराएगा क्या उससे?''

''कुछ नी बस... उसकी देह एक लाल लंगोट धार देंगे...सिंदूर से बदन पोत देणा है, फिर मूँ में रामगोला ठूँस के बाल धोने की मिट्टी से लीप, पीछे बनार-पूँछ खोंस, खप्पर थमा उसे सहरी-बस्ती में डोला देंगे। कुछ तो धरम लोगों में है, दान-दच्छिना मिल ही जाएगी। ''

''इसके मूँ में रामगोला ठूँसेगा? ऊपर मिट्टी पोतेगा? मेरे बछड़े का दम नहीं घुट जाएगा?''

''तेरा जना, दूधमुहा कुँवर कन्हैया जू नी, दस ऊपर दो का धींग है-उसकी जवानी नाक-काँख के नीचे फूट रही। समझेगी नी और बकबक लगा देगी। सुन, इसे थोड़ा नाक से साँस लेने की आदत बनानी पड़ेगी। दो-एक दिन यहीं रबत डाल देंगे। आज से ही ले।''

''ये क्या करतब हुआ भला पेट पालने का? मेरे बेट्टे की साँस में नी बंद करने की।''

''यूँ तो साँस बंद नी होगी। खाने को जी नी मिलेगा तो उसकी तो क्या तेरी भी बंद हो जाएगी। पोस्त का पानी जो गले नी उतरा तो बैठा नी होना, मरा पड़ा रहेगा। उधर उसकी महतारी का मूतना-हगणा रुक जाएगा।''

''और तू कौन पहाड़ चढ़ आएगा, तेरी आँख नी उधड़ने की। मेरी कोख फटी है न...अपना तुखम होता तो लगता।''

''अरे! मेरा तुखम होता तो कौन राज करता? इधर-उधर मोटे-मानुस की सेवा-टहल में खुटता, मिमियाता डोलता, या तेरी-मेरी तरज पर भूखों मरता। मरता...तू नी चाहे तो मुझे क्या पड़ी? मैं फिर छींके-पिंजरे गढ़-गाँठ दूँगा, रद्दी कागद गत्ते के फिर मोर-चिड़िया बना दूँगा। लिए डोलना उन्हें, उड़ाने-बेचने को...तू जाणे अपनी तो डेढ़ टाँग है, उसे लेकर लँगड़ाता-लठियाता चल भर सकूँ हूँ।'' इतना बोल फन्ने ने पास बिखरे 'मजबूत इरादा', 'कड़ी मेहनत' 'पक्का अनुशासन' वाले पोस्टरों को सहेज लिया और खिलौनों के लिए कतर-ब्यौत करने लगा।

जय बजरंग बली, तोड़ दुश्मन की नली!' के ऊँचे बैन के साथ नरसिंघा को हनुमान का रूप धरा, फन्ने ने जब झुग्गी के बाहर किया तो टोलेवाले हँसते-खिल्लाते अचरज-अचंभा करने लगे।

''अरे ओ फन्ने! जो मानुसजात को बानर क्यूँ बना दिया रे?'' तगड़े हूँ रे ने डटियाते हुए पूछा।

''धौंकनी के! जीभ जलेगी, बजरंगबली कूँ बानर बोले। बोल जय हनुमान!'' छग्गी ने साथ दिया तो पास खड़ी लुगाइयों ने भी दोहरा दिया।

''माँ-बाप से मँजूरी-मता नी होवे...छोरे के मूँ में गोला ठूँस दिया। दमघुट मर गिया तो?''

''अरे बिचार भी, परबत उठा लिया तो मरे नी, रामगोला मूँ में रख लिया तो मर जायेंगे। फिर नाक-कान से राम-पौन जाएगा ही। वो भी नी तो राम-भगत कभी कोई

मरा है?''

''अधरम का नास हो!... बोलो, जै बजरंग बली की!''

इस बार कई बोल साथ उठे। छग्गी ने हाथ जोड़ हनुमान के चरणों में सीस नवाया तो पास खड़ी लुगाइयों के हाथ भी जुड़ा गए। बूढ़े बीमार बोल उठे–'रावन की लंका जरो, संकट टारो!'

फन्ने ने नरसिंघा के हाथ में सुनहरी पन्नी से मढ़ी गत्ते की गदा और दूसरे हाथ में भीख का खप्पर थमा दिया और उसे टोले से बाहर शहर की तरफ हँकाल दिया। टोले के लड़के-लीतरे तालियाँ बजाते पीछे दौड़े तो फन्ने ने उन्हें डटिया कर बरज दिया।

'हनुमान' बना नरसिंघा जब तक टोले में खड़ा था, उसे लगा था आज वह बड़ा हो गया है। बहुत बड़ा। ओले के बड़े-बूढ़े उसे हाथ जोड़े सीस नवा रहे...पल-पल मारपीट करने वाला फन्ना उसके आगे झुका था। पोखर पार कर जब वह मजूर बस्ती के छोर तक पहुँचा तो उसे धूप खाते छोरे-छोकरों ने घेर लिया।

''अरे! जे कऊन? बानर... बजरंग बली।''

''ओ-ओ तू किहाँ से आया?''

नरसिंघा ने उन्हें आँख चौड़ा कर के घूरा तो एक बोल उठा, ''ओ बोड़म, तेरा जे रूप! अरे! भेण का जे तो आपना नरसिंघा।'',

''ओय नरसिंघा! जे तेरी गदा, जे तेरी पूँछ। अरे! जे कैसे? बानर का मूँ तो काला होवे, तेरा सुफेद और फिर उसमें जे का?'' कह कर चंदू ने उसके मूँ-गोले पर हाथ फिरा दिया।

नरसिंघा को मजूर-बस्ती में इसी का डर था। उसका चंदू से कल ही टंटा हुआ था। वह नरसिंघा से अंटस बाँधे था। सोचता हुआ वह आगे बढ़ा कि फिर चंदू सामने आ खड़ा हुआ। उसने हाथ बढ़ा कर उसका मुँह काला कर दिया। जाने कहाँ से वह काले में हाथ सान लाया था। नरसिंघा भभक कर 'हू-हू' करने लगा। आगे बढ़ा कि उसने पीछे से उसकी दुम खींच ली। सब खिल-खिलकार हँस पड़े। अभी और भी गुल खिलते कि तभी काम-कमठान पर जाते मजूर-मजूरनियों ने बचाव कर पूँछ ठीक लगा, उसे बस्ती के पार कर दिया।

बस्ती पार कर वह बाजार पहुँचा। पहले तो घमक-धमककर चलता, फिर पेढ़ी दुकान के आगे जा खड़ा होता। इधर-उधर खूँदता, लोगों का ध्यान बँटाता और भीख

का पत्तरा आगे कर देता। कोई देता, कोई धकियाता। इसी तरह वह दूजे पहर तक डोलता रहा।

वैसे फन्ने ने उसे कई दिनों, खूब रबत करवाई थी–नाक में नली घुसेड़ साँस लेने की। एक बार तो गोला उसके मुँह में भर कर उसे दिन भर झुग्गी में रखा था। महावरा हो जाने से दम तो नहीं घुटता था, पर मुँह में ठुँसे गोले से उसके जबड़े तने के तने रह गए थे। नाक से साँस लेते-लेते वह थक भी गया था पर उसने हिम्मत नहीं हारी। फन्ने का भी डर था। उसने सफा बोला था–बेट्टे! जे मजूरी है। कामचोरी न करना। भूखों ही नी मरेगा। पोस्त के फोक का रस भी नी मिलने का तेरे को...और तेरी माँ भी दूजे ठौर किसी मरद के जा बैठेगी, फिर तेरा किन ठौर? सोच में डूबा था कि टप से पत्तर ठिनका। किसी भगत ने पैसा गैरा था।

चढ़े सूरज की किरन, सिंदूर-पुते तन पर काटने लगी तो वह एक तरफ सुस्ताने बैठ गया। सड़क से पीठ मोड़ उसने पत्तर में हाथ घुमाया तो पाँच-दस पैसों के सिक्कों से मुट्ठी भर गई। गिने तो दो रुपए ऊपर बीस पैसे थे। उसने चाहा, पैसे कहीं सहेज ले, पर रखे कहाँ? कुरत्ता-कच्छा होता तो खीसा-खीसू होता, यहाँ तो लंगोट के नाम देह पर एक चिंदी बँधी थी–बस।

''हनुमानजी, अपनी पूँछ सहेजो-पैर पड़ गया तो पाप लगेगा!'' इतना कह कर उस मजूरनुमा आदमी ने उसकी पूँछ उसके हाथ में थमा दी और उसके सामने दस पैसे फेंक दिए। अब दो रुपए से ऊपर मजूरी हो चुकी थी। वह पँच पैसे की मूँगफली और एक 'चा' का हकदार हो गया था। पर खाए-पीये कैसे? मुँह में रामगोला जो ठुँसा है। उसे अब भूख लग आई थी। भूख तो रोज लगती और मरती है, पर प्यास? कैसे पीए पानी? उसने एक बार गोला उगल डालने की सोची पर फिर कैसे गोला भरेगा, मिट्टी पोतेगा? यही सोच वह रुक गया। थोड़ा ठहर कर वह उठ खड़ा हुआ। दो-एक दुकानदारों के आगे उसने खूँद भरी भी, पर जब प्यास और सताने लगी तो आगे न जा, जिस गैल आया था, उसी पर बढ़ चला।

वह बाल्मीकि-बस्ती के आखिरी छोर पर खड़ा था। तभी स्कूल की छुट्टी हुई। स्कूल से छुटे छोरों के टोल ने उसे आ घेरा। घंटों पोथी-पाटी से रुँधे छोरे अब चुहल पर चढ़े थे। एक डाटक छोरे ने पूँछ ही नहीं उखाड़ी, उसकी गदा भी छीन ली। वह बिलबिला कर 'हूँ-हूँ' करता धमक रहा था कि एक हाथ उसके खप्पर में पड़ा और सिक्के खनखना कर धरती पर बिखर गए। उसने 'बचाओ-बचाओ' की गुहार जीभ पर उगाई पर बैन कंठ में घुट कर रह गए। उसने हड़बड़ा कर सिक्के सहेजे तो अब

उसके पास कुल एक रुपया दस पैसे थे। दुश्मन की नली तोड़नेवाले बजरंग बली दुश्मन को महाबली देख खुद रोने लगे। उसने मुँह से गोला निकाल गला फाड़ कर रोना चाहा, पर...दिन-भर भूखा-प्यासा-अनबोला रहा और मजूरी लुट गयी। 'बाप्पा को क्या बोलूँगा? वो मानेगा, भरोसा करेगा?' सोचता हुआ वह उठा और मरे-मरे पग बढ़ाता पोखर की पुलिया के पास जा खड़ा हुआ।

आगे फिर नरसिंघा का वही साँग था, पर अब उसके साथ छग्गी लगी थी- एक हाथ में सोटी और दूजे में भीख-पातर थामे, 'जय बजरंग बली, तोड़ दुश्मन की नली!' के 'जै बोल' के साथ पीछे चलती ऊधमी छोकरे-लड़कों के झपट-झोटों से महाबली को बचाती।

कल नरसिंघा ने लाख हनुमान रामजी की आन ले कहा था-''मैंने रामगोला काढ़ मूँ नी खोला। न खाया, न पिया। पहर खूँदना-माँगना किया पर फन्ने ने एक न मानी। उसने डटियाया, धमकाया ही नहीं उसकी कुट्टस भी की। छग्गी फिर छींके-पिंजरे लिए खाली हाथ लौटी तो उसने हुकम दिया कि कल से वह भी उस 'रोनिए टुकड़िए बजरंगे' के साथ जाएगी। वैसे भी कौन कमा के जुटा रही? इसीलिए मा-पूत आज संग-संग डोल रहे थे।''

पेड़ों तले धूप घिरती कि दोनों निकल जाते। बाजार-बस्ती में माँगते घूमते। परछाईं के पेड़ बनते-बनते जहाँ अलगाव दिखता, वही नरसिंघा अलसा के बैठ जाता। खाने-पीने की हठ करता। छग्गी नहीं मानती तो पसर जाता। खड़ा न होता। हार कर छग्गी उसके मुँह से गोला हटा, उसे कुछ खिला, ठंडा पानी पिला देती। खा-पी के भी वह फिर से गोला मुँह में धरने को राज़ी न होता।

''माई री! मैं बोलने-हँसने को तरस गिया। इस कठगोले से जबड़ा पिरा गया। किसी दूजे हिल्ले लगा दे ना।''

''दूजा हिल्ला? अपनी 'जनती' को नचा चोपड़ पे। पर इस डाइन को कौन देखे? तू कौन मर जाएगा जो एक तनी दड़ी-गेंद मूँ में रख लेगा?''

''मरने की ना बोलता। नाक में खुँसी नली से खूब साँस लूँ हूँ पर आसपास देख, तेरे सूँ बोलने हँसने को जी करे पर बोलूँ कैसे? सुभू ननकी मुनिया मुझे देख डर गई, भूत...भूत बोल पीठ फेर खड़ी हो गई। मेरे जी में आया, प्यार कर पुचकार लूँ...''

''आया बड़ा प्यार-पुचकारवाला...''

''क्यों, बच्चों को प्यार-पुचकार पाप है भला?''

''अरे, तू भी कौन स्याना है?'' बालक ही है। तुझे प्यारा-पुचकारा किसी ने जो तू भी वैसा ही करेगा... सौ ऊपर बीस, तेरे मरे बाप के हाथ धर, फन्ने ने मेरे साथ तुझे भी अपने हिल्ले लिया है-भरी बिरादरी के आगे। फिर पोस्त की लत न हो तो मैं ही भगाकर पार कर देती तुझे, पर...चल, खोल थूथनी।'' और उसने जबर से रामगोला उसके मूँ में ठूँस, गोल हाथ फिरा उसे ज्यों का त्यों कर दिया।

दोनों फिर चल निकले। छग्गी पतरा पसारे घिघियाती और नरसिंघा दुकानों के आगे घूमता-खूँदता रहता। जब धूप पीली होकर मरने लगती, दोनों पोखर के टोले को मुड़ जाते।

यूँ तो छग्गी-नरसिंघा हर साँझ फन्ने के आगे डेढ़-दो रुपए की रेज़गारी लाकर बिखेर ही देते, पर इससे काम सधता नहीं था। नरसिंघा समेत छग्गी को अपने 'घर घालने' के लिए फन्ने ने जो करजा कराया था, उसका बोझ माथे था ही, ऊपर एक छेक और था कि-'जो फिरे, वो चरे। दोनों माँ-पूत तो 'कमाई' से परबारे पैसा मार दिन में कुछ न कुछ खा-पी लेते थे और वह दिन-भर पुलिया पर बैठा, उबासी लेता जुएँ झारता रहता। छग्गी ने 'रामजी की सौं' ले, गंगा मैया का वास्ता दे उसे कमाई न खरचने का बिश्वास दिया था, पर उसे परतीत न होना था, न हुआ। और होता भी कैसे? एक दिन उसने रामगोले पर पहचान की रेख डाल कर उसे आगे रख नरसिंघा के मुँह में धरा था। पर जब साँझ उसने खुद गोला अपने हाथ से निकाला तो पहचान की रेख पीछे थी। उसने दोनों को खूब कूटा-पीटा भी पर कमाई में बढ़ोतरी कहाँ? उसे दिन-भर सोच रहती कि क्या जुगत जोड़े कि कमाई बढ़ जाए। नाम उसका फन्ने था। वह कई फ़न जानता था पर सर मार कर भी वह कोई फन न निकाल सका।

* * *

उस दिन गिनती भर को सिक्के ला कर छग्गी ने फन्ने की हथेली पर धरे थे, फिर भी वह चुप रहा था। रात को वह ठीक से सो न सका था। जब तब कुछ बुदबुदाता रहा था। भोर को भी वह 'राम-राम' 'सियाराम' रटता रहा था। सूरज के थाल के दमकते ही वह 'राम लक्ष्मन जानकी, जय बोलो हनुमान की' के जैकार के साथ लकड़ी टिकाता टोले से निकल गया था। जब लौटा तो उसके चेहरे पर संतोष की रेख अँकी थी। उसने सर खपाकर अपने बालपन में राम रखा पंडित से सुनी सीताराम बजरंगबली की कथा से आखिर 'रामफल' और 'रामफल के बीज' की जोड़-तोड़ बिठाकर एक नई कथा गढ़ ली थी। 'भगतों का, खास तो मा-भेणो' का धरम-धियान खिंचेगी जे

कथा। इसी आस-विस्वास को पाल वह अदालत के आगे दरी बिछाए बैठे बाबू के आगे जा टिका था। बोला-''बाबू एक की ठो सवा ले लो, पै जैसे हम बोले वैसा मोटे कागद पर जई मसीन से लिख दो।'' वह बोलता गया था और बाबू अंगुलियाँ मार कर क़ागज़ पर टिपटिप करता गया था। बिना चाँ-चूँ किए सब पूरा हो गया तो पैसे देने के पहले फन्ने ने कहा-''बाबू, जो लिखा पढ़ दो एक बार।'' वह पढ़ने लगा था।

राम लछमन जानकी, जै बोलो हनुमान की।

* * *

तो भगतों, जो होनी थी जूँ हुई। राम, लछमन जानकी बन में रहे। सिंझया आकास में जूँ फूलै जैसे मन में छलबल की जवाला फैले। सोने का हिरन एक चौकड़ी मारता डोलै। जनक दुलारी की नैन हिरन की भोली दीठ सौं जुरै। मोहिनी रूप छबी देख बोली-''नाथ! इसे ले आओ। हम पालै-पोसैं। राम जी समुझावैं-''परान पियारी। माया का देस है, जो यह बन है। कौन जाने ये मरग छौना किसी का हो जादू टोना।'' लछमनजी हामी भरै पर भगतों, जानो तिरिया हठ। सीताजी देवी थीं, सती थीं, पर थीं तो लुगाई जात। बस, पकड़ बैठी तिरिया हठ। राम लछमन जानकी, जै बोलो हनुमान की!

चले राम, उठा धनुष-बान। लछमनजी जानकी के निगाह बान। राम पीछे-छौना आगे। जैसे माया हरि से भागे। साँझ बिलानी-निसा घिरानी। राम न आने। पल-छिन गुँथ पहर बनैं तो जानकी हिरानी। दाँई आँख उड़ै, मन डूबे। बोले ब्याकुल बानी-''देवरजी! जाओ, अपन भय्या को ल्याओ।'' लछमन जी करैं आना-कानी। ''बियाबान बन, कैसे छोड़ै राजरानी।'' पर सीताजी पल बिफरै काट करता बोल मारै। सीता को लछमन रेखा भीतर घाल, राम खोजन चले, लखनलाल।

राम लछमन जानकी, जै बोलो हनुमान की!

फिर तो जानो भगतों! लंका के रावन की जो कुटिलता थी, फली और जानकी गई छली। उनका हरन हुआ। राम-लछमन डेरे आए। सीता नहीं पा अकुलाए। राम करे बिलाप, लछमन अपनी करनी पर पछताए। शबरी-जटायु सब आए विपद जान, अंत आए पवन पूत हनुमान। हाथ जोड़ राम-चरनों में सीस डाल माँ जानकी का अता-पता लगावे का परण धार। चरणरज ले बोले विकराल। पहाड़ फाँद उड़ चले बजरंग बाल। बन-बन छाने, नदी-नद खंगालै। पे सीता मैया का ठौर न पावै। तीन दिन-तीन रात अन्न न जल, कंद न फल, परान हिरानै, कंठ सुखानौ। देव राम दुखी-माँ जानकी गुमानी। खावै-पीवै कैसे? हनुमान सयानौ पे परान जो न रुकें, तो माँ को भी कैसे

पावैं? बस, जे ही धार रामफल एक मुख में गेरो। रामनाम लिए हिरदय जुड़ानौ। पे रामफल के बीज धरती पर कैसे डारै। जे तो राम भगत को हीय बिदारै। कभू नहीं, बस पिरण किया जूँही मुख में धारे रहे। फिर दिन उगै, निसा घिरै। इत्ते में राम उच्चार सूँ मुँह पड़ा बीज अंकुरै। अब हनुमान रामनाम कैसे उचारैं? पर हठी हनुमान धरा पर बीज न डारे। मन ही मन राम पुकारैं। बीज मुख में फैले अब हनुमान साँस कैसे लेवें? दम घुटै, साँस रुकै पर हनुमान परण से ना टरै। रामफल के बीज मुख धारै अंत तो जा पूगे लंका के असोक-बन। बस वहीं सीताजी कूँ राम की मूँदरी दिखाई। सीताजी। राम लछमन की कुसलाई पूछैं। पर हनुमान मुख से नहिं बोलै। हनुमान कूँ सौन आकुल-ब्याकुल देख सीताजी ने आपन तेज जगाई। हनुमान की मन चीतीं कूँ टोह पायो। के राम के परम भगत राम बीज मुख में पुसाए फिर क्या? राम दुलारी ने आपन आँचर फैलाए। हनुमान ने राम-फल बीज आँचर में गेरायौ। सीताजी ने हनुमान कूँ जलपान करायौ। अपना भाग सराहौ। और जयरामजी के साथ सीताजी का समाचार ले हनुमान राम की ठौर उड़े।

तो भगतों! तभी से जो देवी रामफल के बीज को आपन आँचर में धार इन रामभगत हनुमान की जलपान से सेवा करैं, उन्हें राम उसी ढब मिलै जैसे जानकी को मिलै। राम लछमन जानकी, जै बोली हनुमान की!

ठिकाने पर आकर उसने बाँस पर टँगी 'परबत धारे हनुमान जी' की फोटू को चौखट में से हटा गुडीमुड़ी कर नमक की हँडिया में डाल दिया और उसकी ठौर अपनी गढ़ी कथा के कागद को मढ़ दिया।

फन्ने की सूझ ठीक बन पड़ी थी। राम-बीज की जो कथा उसने गढ़ी थी, खूब चली-फली थी। अब फन्ने भी बजरंग बली के संग हो लिया। पढ़े-लिखो को वह जा कर ना-ना करते भी कथा की काँचमढ़ी पाटी थमा देता और जो ना पढ़ होते, उन्हें खुद डूब कर भगती-भाव से राम-फल की कथा सुनाता। धूप सेंकते अपने छोटे-मोटे धंधे में लगे लोग कथा के बोल सुन-समझ लेते और कुछ-न-कुछ दान-रूप कथा-पाटी के काँच पर धर देते। कभी-कभार कोई भगत उन्हें न्यौत ही देता। पहले फन्ने कथा सुनाता, आँखें भर लाता और बीच-बीच में बजरंग बली के रूप धारे नरसिंघा के चरण छूता। छग्गी आँखों से आँचल लगाती। फिर जब कथा पूरी होती तो कोई भगतीमती घरनी बजरंगबली के आगे आँचल पसार खड़ी हो जाती। 'जयराम', 'जय सियाराम' की रट लगाती 'राम भगत हनुमान की जै' के साथ राम-बीज दान की बिनती करती पहले तो बजरंबली सुनी-अनसुनी करते, फिर विनय-चिरौरी होती तो रामगोला छोड़

मुँह में धरे रामफल के बीज आँचल में उगल देते। तब जलपान-भोग होता। पहले बजरंगबली जल लेते, फिर भोग लगाते। बाद को फन्ने और छग्गी खाते, पहले नहीं। बोलते, 'पहले रामभगत भोग लगावैं, तब रामभगत के भगत परसाद पावैं।'

इधर नरसिंघा को फन्ने पोस्त का रस भी छक कर पिलाने लगा था। उससे हँसी-चुहलें भी करता। छग्गी भी कम ही पिटती। दिन-भर बीड़ियों के सुट्टे उड़ाती। फन्ने से ठुमक-ठुमक बतियाती। पर नरसिंघा गुल-गप्प-मूक रहता। अच्छा से अच्छा भोग लगाकर ठौर पहुँचाता, पोस्त पीता और बीड़ी का धुआँ उगल कर पड़ा रहता। चुपचुप! बुलाने पर भी 'हाँ-हूँ' ही करता। बिना बोले भी उसका मुँह खुला ही रहता। कभी जब मुँह में मक्खी भिनिभिनाने लगती, तभी वह मुँह बंद करता। मन से तो बोलता ही नहीं पर जब बोलता तो बेपर की हाँकने लगता।

''मैं बजरंगबली हूँ-फन्ने तू मेरा चाकर-मैं तेरा ठाकर...मेरा झूठा खाने! मेरा हगा खाएगा? और तू कहाँ की महतारी...फन्ने का भूत...उसके मूँ में दारू का कुल्ला करती - मेरे मूँ में गोला ठूँसती। इस लंगड़ को अपनी टंगड़ पे सुलाती और मुझे टाँग मारती। मैं कभू तुम्हारी लंका में लंपा लगाऊँगा। भगत-भगतन को भी मूत में बसाऊँगा।'' उसकी बक-झक सुन, कई बार छग्गी फन्ने से लड़-भिड़ गई थी।

''हजार बार बोला तेरे कूँ, इस लपरू को जास्ती पोस्त का पानी मत पिला, पर...''

''अरे, तेरे बंदर को जब भोग के नाम माल-मलीदा उड़वाऊँ तब तो नी बोले तूँ... फिर पोस्त, कौन तू हग रही...पैसे काटूँ तभी आवे ना।''

''कौन तू पैसे अपने पसीने के काटे? दिन-भर मेरा छोरा गोला-पटी कटी जीभ लिए डोले, तभी आवै नी पैसा।''

''अरे रीछनी! अपनी जंगली जीभ से तू मैं दोनों क्या कर रिये जो तेरा जे मा-चेंट बेट्टा कर लेता! फिर कौन परबत उठा लिया जीभ पर, एक हलका कठगोला और दो बीज ही तो धार रखे हैं थोथ में...बदल में माल-मलाई पावे, ऊपर से नसा-नुसी का ठाठ अलग।''

''अरे ओ लंगड़-बतंगड़! तू ही ना कर ले, भर ले जे सब साँग। मैंने भोत किया। अब तू बन बजरंगबली, मेरे भाई के साले!'' एकाएक नरसिंघा फटाफट बोल गया।

''लंगड-बंगड़। जो बोल, हूँ तो तेरी माँ का खसम। मैं जो ये सब करने लगा तो तुम दोनों खाओगे क्या मेरा हगा-मूता?''

''री मा! अब जे मौन-मजूरी मेरे से नी होनी। छोड़ इसकी झोली-झुग्गी और कहीं और जा पड़, कहीं काम-मजूरी करेंगे।'' नरसिंघा ने छग्गी का हाथ थाम कहा।

''है इस छगली की हौंस जो चले और ठौर? फिर सुभू उठते ही पोस्त का पानी गले न उतरा तो दो दिन में मैला मूँ से निकलेगा। ''फन्ना तनक कर बोला।

''बेट्टा! कसाई के खूँट बँधे हैं हम दोनों। सो भी जा'' कहकर छग्गी ने उसका माथा सहला दिया।

फन्ने के होठों में ठुँसा बीड़ी का सुलगा ठूँठ खोली के अंधधुप्प में लाल जुगनू-सा दिप-दिप भर रहा था। नरसिंघा की गुर-गुर अब भी न थमी तो छग्गी ने फन्ने के होठों से बीड़ी झपट उसके मुँह में ठूँस दी।

भोर नरसिंघा बड़ा अनमना था। किरन काटे पर कुनमुनाकर करवट ले उसने फिर आँख मूँद ली। छग्गी ने हाथ पकड़ उठाया। तन पर मिट्टी पुतवा हाथ से मुँह में गोला ठूँस, गदा तान उठ खड़ा हो गया। थोड़ी देर बाद बजरंगबली की जै के साथ तीनों फिर सड़क पर थे।

आज रामनवमी थी। फन्ने ने कुछ बड़ा और बढ़िया पाने के हेतु शहर से सटे गाँव की सुध ली। उसने घर-घर हर चौखट पर, कथा-पाटी, बखान-बता खासा पैसे जुटा लिए। सूरज ऊपर आए-आए तभी उसे बीज-दान के दो-एक न्यौते मिल चुके थे। पर आज वह वहीं भोग लगवाने की सोचे था जहाँ खाना-पान से आगे लत्ते-लूगड़ की जुगत बैठ सके। उसने बजरंगबली के मन-मान का हीला ले पतली हालत के जजमानों को टाल दिया। और बस अड्डे के अगे लिलाए खेत में खड़े बड़े 'रामभवन' को बढ़ चला। वहीं भोंपू पर रामधुन लगी थी। और साँझ को ही उसे संपूरन होना था।

'रामभवन' के ठीक सामने उसने जमावड़ा लगाया। बैठे-बैठे देर हो गई। किसी को आता न देख उसने बीड़ी सुलगाई। दो सुट्टे मारे ही थे कि नरसिंघा ने बीड़ी लपक नाक के छेद में खोंस ली और फिर जोर-जोर से ऊँची साँस लेने लगा। उसकी नाक के दूसरे फुनगे से धुआँ निकला ही था कि तभी घर की मालकिन सामने आ पड़ी। थोड़ा देख-समझ बोली-'कैसा है तुम्हारा बजरंग बली? बीड़ी का भोग लगावे, वो भी नाक से।' इतना कह, मुस्कान-सी तान आगे हो गई। तभी फन्ने ने झट उसकी नाक से बीड़ी झपट दूर फेंक दी और 'जै बजरंगबली' के साथ पाटी उसके आगे कर दी।

''मैंने सुन रखा है तेरे बजरंग बली और रामफल की कथा के बारे में...मैंने तो तुम्हें न्यौतने के लिए उन्हें कहा भी था। बैठो आती हूँ कहती घाघरे-लुगड़े में बसी

धरम-धियान वाली अधेड़ उमर की भगतन घर में हो ली। धड़ी टले वह आई। बजरंग बली की आरती उतार, आँचल फैला, सामने खड़ी हो गई। नरसिंघा ने मुँह चौड़ा कर गोला हटा रामबीज आँचल में उगल दिया। न जाने कैसे बीजों के साथ लद से थूक का थक्का भी गिर गया। उसने आँखें तरेरीं। तभी "जै सियाराम" के संग रामगोला धमक से फन्ने के कंधे पर जा लगा।

"अरे, जे का करो बजरंगबली?" फन्ने उफान रोक बुदबुदाया।

"तोड़ दुश्मन की नली। राम कूँ बेंच बजरंगबली के कलपाने वालों ढोंगियों। लुच्चों। मेरी आवाज की लास खाओ तुम...नरिंसघा चीखता बोला।

"क्या हुआ रे तेरे कूँ?" छग्गी ने पूछा।

"चुप...दोनों दिन भर हा-हू कर हँसो, ठिठोली करो। भला देख बोलो, बतियाओ...मैं दिन-भर कठगोले के नीचे जीभ दबा अरथी-सा डोलूँ-फिरूँ।"

"के बोल रिया तुमारा बजरंग बली?' मालकन ने पूछा।"

"अरे नरासिंघे! पगला गया रे क्याा?"

"पगलाया नी", ठीक बोल रिया हूँ। अब रोक मेरा बोल। आज वो सिगरेट बेचने वाले लोग देखे तूने? दो आदमी कित्ते लंबे-लंबे बाँसों पे चढ़े चलते थे-उन्हें देख जगत मुलका रिया था। मेरा मन हँसी से भर गया पर हँसूँ कैसे? मेरी हँसी मर गई, बोली गोले के नीचे दब गई। ध्यान है, कल एक मेम ने छतरी खोली तो उसके तार में उसके बालों का टोपा उलझ ऊपर गया-'गंजी मेम' कहकर लोग कुरलाए, तुम दोनों बात मार-मार के खिल्लाए और मैं अपनी बोल की लास उठाए मन-मारे मुँह-मूँदे खड़ा रिया।"

"अरे, बोल के कौन तेरा पेट भर जाता, बिन बोले जो माल मिले तो भी बड़-बड़ा रिया है।"

"चिड़िया को सोना चुगा दो, बिना चहके रे सकती है? अब मैं भी बोलूँगा और खूब बोलूँगा, मुझे रोक, तेरे बाप का ही तो?" और वह दनादन गालियाँ उगलने लगा। कान में अंगुलियाँ डाल मालकिन जाने लगी तो वह उसके आगे फिर गया-"अरे भगतन! जावे कहा... तू अंधी है जो मैं तेरे कूँ बजरंगबली दिखूँ? मैं तो नरसिंघा। जे रामबीज हैं के खजूर की गुठली? धरम पाल रही। तुम जैसे ढोंगियों ने ही मेरे मूँ में गोला ठुँसवाया, मेरी आवाज को मारा है। मैं तेरी भी लंका में आग लगा दूँगा।

इतना कहकर वह फाँदता, धमकता सामने ओसारे में जा कूदा और राममूरत के आगे सजे पूजा के फूल-पान को इधर-उधर बिखेरता, बम-बम करता, भोजन-पानी को रौंदता भाग खड़ा हुआ।

आलमशाह ख़ान

जन्म : 31 मार्च, 1936 उदयपुर (राजस्थान)

प्रमुख कृतियाँ : किराये की कोख, परायी प्यास का सफर, एक और सीता (सब कहानी संग्रह)

दिवंगत

ज़मीन का आखिरी टुकड़ा

–इब्राहिम शरीफ़

माँ आँगन में चारपाई पर लेटी हुई थी। मेरी आवाज सुनकर उठ बैठीं। मैंने अटैची चारपाई के पास ही रख दी। माँ के पैर छुए और उनके पास बैठ गया। माँ मेरे पास सरक आयी, अपने दोनों पंजे मेरे गालों पर रख दिये और रुआँसी हो गयी।

बड़े दादा और बच्चे भीतर खाना खा रहे थे। आवाज सुनकर आँगन में आ गये। छोटे दादा भी आये हुए थे। बच्चे जूठे हाथों से आकर चिपट गये। मैं उठकर खड़ा हो गया। माँ बोलीं–हाथ–मुँह धोकर खाना खा लो, सफर में थक गये होंगे।

मैंने अटैची उठा ली और अंदर चला आया।

भाभी रोटी सेंक रही थीं। मुझे देखकर हाल पूछा। मैंने कपड़े बदले। सहन में जाकर हाथ–मुँह धोया। लौटकर खाना खाने बैठ गया। मैंने छोटे दादा से पूछा–आप कब आये?

जवाब बड़े दादा ने दिया–परसों सुबह।

–भाभी और बच्चों को नहीं लाये?

–ना।

–बच्चे कैसे हैं?

–मजे में हैं। तुमको याद करते रहते हैं। छोटे दादा ने कौर मुँह में रखते हुए कहा।

दाल में नमक कम था। मैंने थोड़ा नमक लेकर दाल में घोल लिया। बड़े दादा

बोले–तार मिल गया था?

–हाँ।

–मैंने सोचा था, तुम परसों ही आ जाओगे।

–छुट्टी नहीं मिली।

उन्होंने कौर चबाते हुए मेरी तरफ देखा। कुछ–कुछ नाराजगी के साथ बोले–तुम्हारी यह शिकायत कभी दूर भी होगी?

–मैं क्या कर सकता हूं? फैक्टरी के नियम ही ऐसे हैं...नौकरी भी तो करनी है।

उन्होंने गिलास उठाकर मुँह से लगा लिया। बच्चे खाना खा चुके थे। बड़े दादा उठे, बाहर जाकर हाथ धो आये। खूँटी पर टंगी हुई कमीज की जेब में से बीड़ी निकालकर सुलगा ली, दीवार से पीठ सटाकर बैठ गये। छोटे दादा भी खाना खत्म कर चुके थे, मगर वहीं बैठे रहे।

बीड़ी के चार–छः कश लगाकर बड़े दादा बोले–तुम्हें पता है, दो साल बाद तुम घर आये हो?

–माँ की तबीयत ठीक ही तो है...आपने तार किसलिए दिया था?

मेरी कटोरी में दाल खतम हो गयी थी। मैंने थोड़ी दाल और लेकर उसमें नमक मिला लिया।

–क्या माँ के मरने के बाद ही आने का इरादा था?

–बड़े दादा, आप भी क्या बात करते हैं... मैं जानबूझकर थोड़े यहाँ नहीं आता हूँ? मैंने गिलास के बचे पानी में ही उँगलियाँ डुबा दीं।

–तो तुम ही बताओ, ये भी तो नौकरी करते हैं...मगर साल में एक बार हाल तो पूछ जाते हैं... तुम्हारे तो बीवी–बच्चे भी नहीं हैं...

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। छोटे दादा को शायद लगा कि मैं इन सवालों से दुखी हो गया हूँ। वह जैसे स्थिति को संभलाते हुए बोले–मेरी तो सरकारी नौकरी है न दादा... चाहे जब छुट्टी ले सकता हूँ, किसी न किसी बहाने...प्राइवेट में दिक्कत होती है...।

बड़े दादा ने बीड़ी का टोंटा जमीन पर रगड़ दिया। मेरी तरफ फिसलती निगाह से देखा। बोले–तुम कभी शीशे में अपनी शक्ल भी देखते हो?

उनका सवाल सुनकर मुझे हँसी आ गयी। मुझे हँसता देखकर छोटे दादा और

पास में बैठे हुए बच्चे भी हँस पड़े। भाभी चूल्हें के पास ही बैठी खाना खा रही थीं। शायद दाल खत्म हो गयी थी। हर दूसरे-तीसरे कौर के साथ वह कुर्र करके प्याज कुतर रही थीं। बड़े दादा ने आगे पैर पसार लिये थे। मैंने उनकी तरफ देखा। उनकी खोपड़ी बिल्कुल गंजी हो गयी थी और गाल खासे पिचक गये थे। मेरे भीतर कुछ हिल-सा गया। मैंने उनसे कहा-बड़दा, आपकी सेहत काफी गिर गई है।

उन्होंने उठकर जेब में से एक बीड़ी और निकाल ली। बोले-तुम अपनी पर तो ध्यान दो... देखी है, शकल कैसी निकल आयी है, बिज्जुओं जैसी... इसीलिए तो कहता हूँ, शीशे में अपनी शकल देख लिया करो।

मैं बड़े दादा के बारे में सोचने लगा। मुझे ठीक से याद भी नहीं है, मेरे पिता कब मर गये थे। मुझे पाला-पोसा बड़े दादा ने ही। छोटे भाई की तरह नहीं, अपने सगे बेटे की तरह, मुझे ही नहीं, छोटे दादा को भी। हमें पढ़ाया-लिखाया। काम-धंधे के लायक बनाया। जब मेरे पिता चल बसे थे तब उनकी उम्र सिर्फ सत्रह साल की थी और साल भर पहले ही उनकी शादी हो चुकी थी। मगर जायदाद में अपना हिस्सा लेकर वह अलग नहीं हो गये थे। परिवार के सारे बोझ को कंधों पर धर लिया। माँ, चाची, दो छोटे भाई, बीवी। सभी को समेटे रखा। चाची की मौत-मिट्टी की, छोटे दादा की शादी की, इस सबके बदले में किसी से कुछ नहीं चाहा। अपने ही सिर के बाल उड़ा लिये। गाल पिचका लिये। जिल्लतें सहीं। मगर शू नहीं किया। इस सबके बीच इतना जरूर हुआ कि पिता की छोड़ी हुई जायदाद धीरे-धीरे सरकने लगी। कर्जदारी बढ़ने लगी। फांकों ने हमारी दहलीज में झाँकना शुरू किया। तगादों की आवाजें बुलंद होने लगी। बीच बाजार में उनके गिरेबान परम जबूत पंजे पसरने लगे। फिर भी उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। आगे चलते गये, दोनों कंधों को बोझ से दबाये ही।

मैं उठकर बाहर आँगन में आ गया। मेरे पीछे छोटे दादा भी आ गये। माँ लेटे-लेटे माला फेर रही थीं। मुझे देखकर चारपाई पर एक तरफ हो गयी। मैं उनके पास बैठ गया। छोटे दादा सामने वाली चारपाई पर बैठ गये। माँ ने माला समेट कर तकिये के नीचे रख दी। बोलीं-खाना खा लिया? खाया क्या होगा, कोई सब्जी भी तो नहीं थी। मैंने माँ के कंधे पर हाथ रख दिया।

भाभी भीतर चौका साफ कर रही थीं। बच्चे शायद सोने की तैयारी कर रहे थे। बड़े दादा उठकर आये। सामने वाली चारपाई पर बैठ गये। भीतर की रोशनी बाहर आँगन में पड़ रही थी। बेहद मामूली-सी। शक्लों की शिनाख्त भर करने लायक बड़े

दादा थोड़ी देर चुपचाप बैठे रहे। फिर चारपाई पर लेट गये। छोटे दादा ने मुझसे पूछा-तुम्हारी फैक्टरी में कितने आदमी काम करते हैं?

-सात सौ।

-सात सौ? बहुत बड़ी फैक्टरी होगी।

-और क्या।

-बड़े दादा ने लेटे-लेटे पूछा-तुम्हारी तनखाह बढ़ी है कि नहीं?

-बढ़ी है...अठारह रुपये?

-बस पाँच साल में अठारह रुपये?

-पार साल ही तो मैं पर्मानेंट हुआ हूं... मालिक हरामी है....

-क्या कहता है? छोटे दादा ने पूछा।

-कहता क्या है? ...वर्कर्स के साथ बेरहमी दिखाता है। धमकी दो तो यूनियन के नेताओं को खरीद लेता है या सिर फुड़वा देता है।

सिर फूटने वाली बात से शायद बड़े दादा चकरा गये। झट से उठ बैठे। उस झीनी रोशनी में मेरी तरफ गौर से देखने की कोशिश की। बोले-तुम इन झंझटों में पड़ते तो नहीं हो न? अलग ही रहा करो...

-बड़दा, आप भी कैसी बात करते हैं। हर आदमी इसी तरह अलग रहेगा तो हक के लिए लड़ेगा कौन?

छोटे दादा शहर में नौकरी करते है। वह मेरी बात समझ गये। मेरा समर्थन करते हुए बोले-यूनियन के कामों से ऐसे अलग रहकर काम नहीं चलता दादा...

बड़े दादा फिर लेट गये। बोले-सो तो ठीक है, फिर भी होशियारी से काम लेना चाहिए... छोटू वहां रहते भी अकेले हैं न...

माँ को शायद नींद आ रही थी, उन्होंने भी यही ताकीद दुहरा दी और आँखें मूँद लीं। भीतर भाभी भी काम से निपट कर बच्चों के पास ही सो गयी थीं। थोड़ी देर चारों तरफ चुप्पी छायी रही।

लेटे-लेटे ही अचानक बड़े दादा बोले छोटू मैंने वह बची हुई जमीन बेच दी है।

मैंने कोई जवाब नहीं दिया तार पाने के बाद मुझे जो ख्याल आया था वह ठीक ही था। छोटे दादा ने जैसे खुलासा किया-बेच देना ही ठीक था... वरना बेकार में ब्याज

चढ़ जाता... फिर तो जमीन बेचकर भी कर्जा चुकाना मुश्किल हो जाता....

–तुम लोगों से पूछे बिना ही यह फैसला ले लिया। बड़े दादा के स्वर में रंज था।

–हमसे पूछते तो हम भी यही सलाह देते...

–करता क्या, कर्जदार मेरी जान खाये जा रहा था।

–खैर छोड़िए, फिकर करने की कोई बात नहीं।

माँ ने करवट बदली। उनकी नींद उचट गयी थीं। या लेटे-लेटे वह चुपचाप हमारी बातें सुन रही थीं। बोलीं–तुम्हारे पिताजी की वह आखिरी निशानी थी... वह भी चली गयी।

बड़े दादा उठ कर चुपचाप बैठ गये। मैंने माँ को ढाढ़स दिया– निशानी–विशानी कुछ नहीं होती माँ। पिताजी ने हमारी ही जरूरतों के लिए ही तो जमीन रखी थी।

बड़े दादा उठकर भीतर गये। घड़े में से पानी लेकर पिया। बीड़ी सुलगाई। वापस आकर चारपाई पर बैठ गये। बीड़ी के दो–चार तेज कश खींचे और अपने आप बड़बड़ाने लगे–हमारी जमीनें इतनी जल्दी नहीं बिकतीं... लेकिन आधी तो सूद पर ही चली गयी... गाँव में और कोई भी तो नहीं है। कर्जा देने वाला यही साला अकेला इब्बू है... इसका ब्याज तो आग जैसा है...जलाकर राख कर देने वाला.... साल भर गुजरा कि नहीं, कर्जे की रकम दुगुनी हो जाती है... जरूरतमंद करे भी क्या.... इसी तरह कर्ज लेता रहेगा, इसी तरह अपने आप को बेचता रहेगा... यह हरामी इब्बू गांव में किसी को जिंदा नहीं छोड़ेगा...सब को खा जायेगा....

छोटे दादा को शायद नींद आ रही थी, बोले–दादा, जाकर सो जाइये। कल सुबह तड़के उठना भी तो है। पहली बस से जाना ही ठीक रहेगा...

–हाँ छोटू, कल चलना है रजिस्ट्रार आफिस को... मैंने चार–पाँच दिन पहले ही कागजात तैयार करवा लिये हैं... बस तुम्हारा इंतजार था... तुम्हारा तार मिलने के बाद वकील के कारिंदे से भी कह दिया, कल सुबह चलने के लिए.... गाँव वालों का भी क्या भरोसा... खरीदार के कोई कान भर देगा तो वह मुकर न जाये... फिर और किसी को खरीदने भी नहीं देगा इसलिए रजिस्ट्री कल ही हो जानी चाहिए... क्या खयाल है? सुबह की बस से चलोगे तो शाम तक लौट आयेंगे...वरना रात हो जायेगी... माँ को भी तो साथ चलना है न.... रात हो जायेगी तो इनको तकलीफ होगी... उन्होंने बीड़ी का टोंटा फेंक दिया, उठे, सोने भीतर चले गये। माँ ने पैरों के पास पड़ा हुआ कंबल खींच कर ओढ़ लिया। छोटे दादा दूसरी चारपाई पर पसर गये। मैं माँ की बगल में ही सिकुड़ गया।

मच्छरों की वजह से रात को ठीक से नींद नहीं लगी। सबेरे ढंग से आँख लगी कि भाभी ने जगा दिया। बड़े दादा शायद वकील के कारिंदे के पास गये हुए थे। माँ कंबल ओढ़े मेरे पास वाली चारपाई पर बैठी होंठों में कुछ बुदबुदा रही थीं। छोटे दादा शायद दातून कर रहे थे। मुझे जगाकर भाभी बोलीं–लाला उठो, जाना नहीं है?

मैंने आँखें मलीं। देखा, पास के नीम के पेड़ पर आठ–दस चिड़ियाँ चहक रही हैं। नीम की पतली–सी टहनियाँ हल्की–सी हवा के झोंकों की वजह से हौले–हौले झूल रही हैं। मैंने आवाज दी–भाभी, क्या चाय बन सकेगी? भाभी ने कोई जवाब नहीं दिया। शायद मेरी आवाज सुनी नहीं हो। मैं उठकर भीतर गया। बच्चे टेढ़े–मेढ़े सो रहे थे। भाभी आटा गूँध रही थीं। मैंने दुबारा पूछा–चाय नहीं बनाओगी?

इतने में छोटे दादा अंदर आ गये। शायद उनको भी चाय की तलब लगी थी। भाभी बोलीं–पत्ती है और गुड़ भी... दूध आने में देरी होगी।

मैंने छोटे दादा से पूछा–बिना दूध की चाय पी लेंगे आप? वैसे होती शानदार है। भाभी से मैंने चूल्हा जलाने को कहा और खुद चाय बनाने बैठ गया।

बड़े दादा आ गये। भाभी को आटा गूँधते देख कर बरस पड़े–अभी तक तुमने कुछ बनाया नहीं है? हम क्या दस बजे तक यहीं बैठे रहेंगे? मैंने उन्हें भी थोड़ी–सी चाय दी। भाभी पराँठे सेंकने लगीं। बड़े दादा से बोलीं–ले जाने के लिए भी चार–छह पराँठे सेक दूँ? अचार के साथ खा लेना... माँजी बाहर का खाना खायेंगी भी नहीं।

मैं हाथ मुँह धोकर तैयार हो गया। हम लोगों ने नाश्ता किया। माँ ने सिर्फ आधा पराँठा खाया। उनका चेहरा उतरा हुआ था। मैंने सोचा, शायद उन्हें अपने पति की याद आ रही होगी। उनकी छोड़ी हुई जमीन का आखिरी टुकड़ा भी तो बिका जा रहा है। माँ ने पानी पिया और माला लेकर बैठ गयीं।

भाभी ने पराँठे एक पुराने अखबार में लपेट कर झोले में रख दिये। एक खाली लोटा भी साथ में रख दिया, पानी–वानी पीने के लिए। माँ ने कहकर उससे अपनी शाल भी रखवा ली। झोला हाथ में लेते हुए बड़े दादा ने भाभी से पूछा–हम पांच जनों के लायक खाना रख दिया है न?

–पाँच कौन, हम चार ही तो हैं? मैंने पूछा।

–वह वकील का कारिंदा भी साथ चल रहा है न...उसी ने तो कागजात तैयार

किये हैं.... जमीन के रुपये भी तो वही साथ लायेगा।

माँ की तरफ देख कर बड़े दादा ने कहा- माँ चलें?

मैंने माँ की तरफ नहीं देखा। छोटे दादा और मैं बाहर आ गये। माँ बड़े दादा के साथ चलने लगीं। बाहर आकर बोलीं-बेकार में जायदाद में मेरा हिस्सा भी लिखा गये हैं...वरना मेरे ये बार-बार के चक्कर नहीं होते... गाँव में फजीहत अलग से... मैंने ही कौन-सी जायदाद बचा ली है?

किसी ने उनकी बात का कोई जवाब नहीं दिया। चुपचाप चलने लगे। तीन साल पहले, सर्दियों में माँ के दाहिने हाथ और पैर पर लकवे का जो हमला हुआ था, उसका असर अब तक था। वह दाहिने हाथ से पानी का भरा लोटा भी ढंग से उठा नहीं पाती थीं। और चलते हुए दाहिने पैर को घसीट कर चलती थीं। इनके इलाज के लिए दादा ने जो पैसा उधार लिया था, उसका भी एक हिस्सा था जमीन की बिक्री में। पता नहीं छोटे दादा क्या सोच रहे थे लेकिन उनके साथ चलते हुए मेरे दिमाग में यही सारी बातें कुलबुला रही थीं।

हम लोग बस के समय से पहले ही अड्डे पर पहुँच गये। लेकिन वह वकील का कारिंदा अब तक नहीं पहुँचा था। बड़े दादा व्यग्र होकर उसकी राह देखने लगे। छोटे दादा को भी बेचैनी होने लगी। माँ भी माला फेरने के दौरान बीच-बीच में उसके न आने की वजह पूछने लगी। मैं थोड़े से घेरे में चहलकदमी करने लगा। हम लोग उसकी राह देख ही रहे थे कि बस आयी और निकल गयी। बड़े दादा की बेचैनी बढ़ गयी। वह बार-बार बीड़ी सुलगाने और बड़बड़ाने लगे-पता नहीं क्या बात हो गयी। सुबह भी मैं उससे मिला था, उसने ऐसी कोई बात नहीं कही थी... तो अब आया क्यों नहीं? साले इब्बू ने तो कोई अड़ंगा नहीं अड़ा दिया होगा।

छोटे दादा दो-चार बार जिज्ञासा दिखा कर गुमसुम हो गये। मैं माँ के पास बैठ गया। बड़े दादा पास में पड़ी हुई बड़ी-सी चट्टान पर उकडूं बैठकर बेचैनी से थूकने लगे। छोटे दादा ने उसे दूर से आते हुए देख लिया। उत्साह में उछल कर बोले-दादा, वह आ रहा है। यह बात सुनते ही उन्होंने उँगलियों में फंसी हुई बीड़ी परे फैंक दी, तेजी से उठ कर खड़े हो गये। वह अपनी बड़ी-सी बेढब तोंद को झुलाता हुआ हाथी के बच्चे की तरह चला आ रहा था।

उसके पास आते ही दादा लपक पड़े-क्या बात हो गयी थी चाचा? बड़ी आँखे दुखाई तुमने। तेज चलने की वजह से वह शायद थक गया था। उसी चट्टान पर बैठ

कर हाँफने लगा। बीच-बीच में दाँत ऐसे चलाने लगा जैसे जुगाली कर रहा हो। मैंने देखा उसकी कमीज की जेब बेहूदगी की हद तक बड़ी है और उसमें तरह-तरह के कागज ठुँसे हुए हैं। उसने जेब में तीन-चार रंग-बिरंगे पेन लगा रखे हैं। हाथ में एक झोला है जो शायद कागजों से ही भरा हुआ है। उसने साँस धीमी की और बोला-क्या करता, इब्बू ने रुपये देने में देरी कर दी। सुबह सात बजे ही मैं उसके घर पहुंच गया था। लेकिन पैसे वालों के नखरे तुम जानते ही हो। इसी में देरी हो गयी। चलो कोई बात नहीं, अगली बस से चलेंगे। बड़े दादा ने एक बीड़ी और सुलगा ली।

रजिस्ट्रार के दफ्तर पर जब हम पहुंचे तो दोपहर के खाने का समय हो गया था। साहब खाना खाने घर चले गये थे। दोनों क्लर्क दफ्तर में ही बैठे खाना खा रहे थे और सामने बैठी हुई टाइपिस्ट लड़की को देखे जा रहे थे। चपरासी स्टूल पर बैठा बीड़ी पी रहा था। हम लोग वहां पहुँचे तो वह उठ कर खड़ा हो गया और हमारे साथ वाले आदमी को बड़े जोश से नमस्ते की। उसने हमारी तरफ भी मुसकराती निगाहों से देखा। शायद उसे हमारी शिनाख्त हो गयी थी। पिछले दस सालों में यह पाँचवी या छठी बार हम लोग वहाँ गये थे। इसी तरह तीन भाई और माँ। हाँ, पहले एकाध बार हमारी चाची भी साथ थीं जो हमारी ही तरह बिकी हुई जमीनों की हकदार थीं। लेकिन वह बार-बार यह जहमत उठाने से बच गयीं और चल बसी थीं। इन्हीं सारी बातों के साथ ही यह सवाल भी मेरे दिमाग में चक्कर काटने लगा कि सरकार को यह क्या सूझी कि इतने मामूली से कस्बे में रजिस्ट्रार आफिस खोल रखा है। क्या और कोई जगह नहीं मिली होगी? सब कुछ हास्यास्पद था। मैं सोचता रह गया।

बस से उतर कर यहाँ तक पैदल चलने की वजह से माँ थक गयी थीं। उन्हें प्यास लग आयी थी और शायद भूख भी। मैंने माँ से पूछा-माँ, खाना खाओगी?

यह बात सुन कर हमारे साथ के कारिंदे ने अपनी फैली हुई जेब में से कागजों का पुलिंदा निकाला और उसके बीच में तह करके रखे हुए नोटों में से एक दस रुपये का पत्ता बड़े दादा की तरफ बढ़ाते हुए बोला-तुम लोग जा कर पास के ढाबे में खाना खा लो... अब हमारा काम तो ढाई बजे ही होगा.... मैं साहब के घर जा कर कह दूंगा कि हमारा काम जरा जल्दी कर दें.... आफिस में कहना ठीक नहीं रहेगा... उसने मेरी तरफ देख कर मुस्करा दिया जैसे यह कहना चाहता हो कि हथेली की गर्मी को तुम्हारे शहरों के दफ्तर वाले ही नहीं, हमारे गाँवों और कस्बों के दफ्तर वाले भी जानते-पहचानते हैं।

बड़े दादा ने नोट नहीं लिया। बोले-हम खाना ले आये हैं। छोटे दादा को शायद

उसका नोट देना अच्छा नहीं लगा। वह आवाज में कुछ तुर्शी भरते हुए बोले, हमारी तरफ से तुम ही रख लो चाचा... तुम्हें भी तो खाना खाना है...शायद उसकी समझ में बात नहीं आयी। वह हीं-हीं करके हँसने लगा। जब वह साहब से मिलने के लिए उसी तरह झूलता चला गया, छोटे दादा हिकारत से बोले–हरामजादा, खाना खाने के लिए हमें पैसे देने लगा है... लोगों के कागज-पत्तर लिख कर चार पैसे क्या कमा लिये हैं, साले का दिमाग फिर गया है... वो दिन भूल गया जब इसकी माँ हमारे घर पर अनाज बीना करती थी, दो जून रोटी के लिए... स्साला... मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि अचानक वह इस तरह गुस्सा क्यों हो रहे हैं, अपनी फितरत के खिलाफ। मैं सोचने लगा, पिता की सारी जमीन के बिक जाने का उन्हें जो दर्द हो रहा है, उसे वह झेल नहीं पा रहे हैं। प्यास की वजह से माँ का गला सूख गया था। वह धीरे से खाँसने लगीं। बड़े दादा बोले–चलो, सामने के बगीचे में चल कर खाना खा लेते हैं... इब्बू साले की वजह से इतनी देरी हो गयी...वरना अब तक काम पूरा हो गया होता, दो बजे वाली बस से लौट भी जाते। माँ को चलने में तकलीफ हो रही थी। वह आज अपनी शक्ति से बढ़कर चल चुकी थीं। छोटे दादा ने उनकी बाँह पकड़ ली और धीरे-धीरे चलने लगे। हम लोग सड़क पार करके बगीचे के पास आ गये। बड़े दादा वहीं खड़े माली को ऊंची आवाज में पुकारने लगे। आठ-दस आवाजों के बाद माली ने जवाब दिया।

–क्या हम कुँए पर बैठ कर खाना खा लें?

–आ जाइए, इसमें पूछने की क्या बात है?

माली को आजाद हिंदुस्तान की हवा अभी नहीं लगी है। मैं धीरे-धीरे चलते हुए सोचने लगा।

–तुम्हारे यहां का कुत्ता बड़ा खतरनाक है। भई...बड़े दादा को कुत्तों से नफरत थी और डर भी।

–डरिए नहीं, वह कुछ नहीं करेगा...मैं जो आप से बात कर रहा हूं।

माली ने ही कुएं से एक बाल्टी पानी निकाल कर दिया। हम लोगों ने हाथ मुँह धोये। माँ ने खाने से पहले ही लोटा भर पानी पी लिया। हमने खाना खाया। अब भी माँ ने आधे पराँठे से ज्यादा नहीं खाया। वह खाली पानी पीती रहीं। बड़े दादा ने कुल्ला किया। सरक कर पेड़ के तने से सट कर बैठ गये। बीड़ी सुलगा ली? मैंने झोले में से शाल निकाल कर जमीन पर बिछा दी। माँ को थोड़ी देर आराम करने के लिए कहा। बड़े दादा बीड़ी पीते हुए पेड़ के पत्तों की तरफ देख रहे थे। बोले–छोटू, अब तुम्हें

अपनी आदतें सुधारनी होंगी... देख रहे हो न, बित्ता भर जमीन भी अब हमारी नहीं रही है। मैंने उनके चेहरे की तरफ देखा। लगा जैसे हवाइयां उड़ रही हैं। मैंने गर्दन झुका ली। उन्हें किसी तरह का जवाब देने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। उन्होंने बीड़ी फेंक दी। कुछ रूखें स्वर में बोले–समझ रहे हो, मैं क्या कह रहा हूँ?

–जी...

–जी-जी से काम नहीं चलेगा, हमें अपने पिताजी की जमीन वापस खरीदनी है... यह तुम दोनों से ही हो सकता है।

–आप अपने यहां के इब्बू हरामजादे का कलेजा फाड़ दीजिए... मैं अपनी फैक्टरी के मालिक की बोटियां नोच लूँगा... और ये...ये अपनी सरकार की गर्दन काट देंगे... तभी हम अपने पिताजी की जमीन वापस कमा सकते हैं... खतम कर सकेंगे इब्बू को आप?

मैं उठकर खड़ा हो गया। मेरा जिस्म हलका-सा झूल रहा था। शायद गुस्से के अतिरेक की वजह से। मैं जा कर थोड़ी देर कुएं पर खड़ा रहा, फिर लौट आया। बड़े दादा उसी तरह चुपचाप बैठे हुए थे। माँ शायद मेरी कड़कती आवाज सुन कर घबरा गयी थीं। वह उठकर बैठ गयीं। काफी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। बड़े दादा के लटक आये हुए चहेरे को देख कर छोटे दादा को रहम हो आया था। वह धीमी आवाज में बोले–दादा, छोटू ठीक ही कह रहे हैं...इन हालातों में कोई भी अपनी खोई हुई जमीन दुबारा खरीद नहीं सकता... आप ही सोच कर देखिए, हम लोग भला जमीन कैसे खरीद सकते हैं?

बड़े दादा कुछ नहीं बोले। जैसे गहरी सोच में डूब गये हों, छोटे दादा ने माँ को बाँह पकड़ कर उठाया। बड़े दादा की तरफ तरस खाती नजरों से देखा। बोले–चलिए, काफी देर हो गयी है.. दफ्तर में काम शूरू हो गया होगा।

हम लोग दफ्तर में दाखिल हुए। पता चला, साहब अभी नहीं आये हैं। खाना खा कर घर पर आराम कर रहे हैं। उनका कमरा अब भी बंद था। सामने के कमरे में दोनों बाबू बैठे हुए थे। एक के आगे बड़ा-सा रजिस्टर फैला हुआ था जिस पर वह कुछ लिख रहा था, दवात में कलम डुबो-डुबो कर। दूसरा बाबू पान चबाते हुए कोई कागज बहुत ध्यान से पढ़ रहा था। बायीं तरफ की खिड़की के पास बैठी टाइपिस्ट बहुत मामूली-सी रफ्तार के साथ कुछ टाइप कर रही थी। टाइप में शायद उसका मन नहीं लग रहा था। वह बीच-बीच में खिड़की के बाहर झांक रही थी। उस खिड़की के साथ

ही बरामदे में बने हुए लंबे-से चबूतरे पर हमारे साथ वाला कारिंदा लेटा सुबह की तरह जुगाली कर रहा था। चपरासी उसके पैरों के पास बैठा उससे बातें कर रहा था। उस चबूतरे के रू-ब-रू, बरामदे के दूसरी तरफ बने हुए वैसे ही लंबे चबूतरे पर कोई पाँच-छह लोग चुपचाप बैठे हुए थे। ठेठ गांव के लोग। शायद वे भी अपनी जमीन-जायदाद की बिक्री के सिलसिले में आये हुए थे।

हमें देखते ही कारिंदा उठ कर बैठ गया। चपरासी परे हठकर खड़ा हो गया। शायद उस पर मेरी और छोटे दादा की पतलूनों का रोब पड़ रहा था। कारिंदे ने पूछा-खाना खा लिया?

छोटे दादा ने माँ को एक तरफ बिठा दिया। माँ ने माला फेरनी शुरू कर दी। उन्होंने किसी तरफ कोई खास ध्यान नहीं दिया। बड़े दादा ने कारिंदे से साहब के बारे में पूछा। उसने जुगाली बंद की। बोला-सब ठीक हो गया है। साहब अभी आने वाले हैं, पहले हमारा ही काम होगा। बड़े दादा उसकी बगल में बैठ गये। उनकी बगल में छोटे दादा। मैं खिड़की के पास खड़ा हो गया। सामने के चबूतरे, पर बैठे हुए लोग उसी तरह गुमसुम थे।

साहब जब आये तो धूप काफी फीकी पड़ गयी थी। साढ़े तीन के करीब का समय था। उन्हें दूर से आते देख कर चपरासी ने भाग कर उनके कमरे के किवाड़ खोल दिये। दोनों चबूतरों के लोग उठ कर खड़े हो गये। सिर्फ माँ बैठ रहीं, उसी तरह माला फेरती हुई। हमारे साथ वाले कारिंदे ने एक बार फिर कस कर साहब को सलाम किया। उन्होंने उस पर नजर डाली तो उन्होंने होंठों पर खिली हुई मुसकराहट को चुस्ती के साथ भीतर लपेट लिया, अपने कमरे में चले गये। घंटी बजायी। भाग कर चपरासी उनके कमरे में गया। पल भर के बाद लौट आया। धीमी आवाज में हमारे साथ वाले कारिंदे से कुछ कहा। लौट कर बाबुओं वाले कमरे में चला गया।

कारिंदे ने अपने झोले में से कागज निकाले। जल्दी में उन्हें एक बार उलटा-पुलटा। तेज कदमों से जा कर पान चबाने वाले बाबू के आगे कागज रख दिये। समाने वाले चबूतरे पर बैठे हुए लोगों में भी अब चहल-पहल आ गयी थीं। उनमें से एक आदमी अपने झोले में से कुछ कागज निकाल कर देख रहा था। मैं जिधर खड़ा था, उधर से साहब के चेहरे की झलक मिल रही थी। मैंने देखा, मुझे उनका धड़ और मोटा-सा सिर ही नजर आ रहा था। बहुत गौर करने पर भी उनकी गर्दन का कहीं नामो-निशान नहीं था।

काफी देर बाद चपरासी ने आकर हम लोंगों को अंदर चलने के लिए कहा।

हम लोग बाबुओं वाले कमरे में पहुँचे, चपरासी ने एक छोटी-सी मेज पर बड़ा-सा खुला रजिस्टर लाकर रखा। उस पर खाने बने हुए थे। पहले दो-तीन खानों में कुछ लिखा हुआ था। आखिरी खानों में हम लोगों को दस्तखत करने थे। पहले खाने में माँ को, उसके नीचे वाले में बड़े दादा को, तीसरे में छोटे दादा को और चौथे में मुझे। इसी क्रम से हमारे नाम दर्ज थे। माँ दस्तखत करना नहीं जानती थीं। बड़े दादा ने चपरासी को बताया। बगल की मेज पर से बड़ा-सा रोशनाई का पैड उठा लाया। माँ के दाहिने हाथ का अँगूठा अपने हाथ में ले कर उसने पैड पर रगड़ कर काला किया। माँ को अपना अँगूठा एकदम ढीला छोड़ देने की हिदायत की और सब से ऊपर वाले खाने में अँगूठे का बड़ा-सा निशान लगा दिया निशान लगाते हुए माँ का अँगूठा काँप रहा था। चपरासी ने रजिस्टर का पन्ना पलटा। उस पन्ने पर भी सबसे ऊपर वाले खाने में माँ के अँगूठे का निशान लगाया और इसी तरह तीसरे पन्ने पर भी। उसके बाद उसने बगल में पड़े हुआ खुरदारा काला कपड़ा उठा कर माँ को दिया, अपना अँगूठा पोंछ लेने के लिए। मैंने वह कपड़ा अपने हाथ में ले कर माँ का अँगूठा अच्छी तरह पोंछा और उन्हें बाहर चबूतरे पर ला कर बिठा दिया।

मैंने देखा, माँ का चेहरा कसा हुआ है और उनके हाथ जाहिर तौर पर काँप रहे हैं। वह अपने पल्लू से आँखें पोंछने लगीं।

हम तीनों भाइयों ने तीनों पन्नों पर अपने दस्तखत कर दिये। हमें भी दस्तखतों के नीचे अपने अँगूठों के निशान भी लगाने थे। सरकार की एहतियाती सूझ पर मुझे खुशी हो आयी। कहीं तो वह सजग है। यह सब कर-करा कर हम लोग भी बाहर चबूतरे के पास आ गये। बड़े दादा का चेहरा भी खासा कसा हुआ था। उनके गालों के गड्ढे कुछ और धँसे हुए लग रहे थे। वह चुपचाप बैठे रहे। छोटे दादा माँ के पास जाकर बैठ गये। हमारे साथ वाला कारिंदा बाबुओं के कमरे में ही खड़े कुछ बातें कर रहा था। हमारे सामने वाले चबूतरे पर बैठे हुए लोगों को भी यही सब करना था। उनमें से दो आदमी उठ कर चपरासी के कहने पर अंदर गये।

कोई पंद्रह-बीस मिनट बाद हमें साहब के कमरे में जाने के लिए कहा गया। हम लोग जाकर सहाब की बड़ी-सी मेज के इर्द-गिर्द खड़े हो गये। माँ के और बड़े दादा के चेहरों पर अब तक भी सहजता नहीं आ पायी थी। साहब के आगे वही रजिस्टर फैला हुआ था जिस पर हम लोगों ने दस्तखत करके अँगूठे के निशान लगाये थे। साहब थोड़ी देर कुछ पढ़ते रहे, फिर गंभीर आवाज में बोले-सुभ्रदा देवी आप ही हैं?

–जी। माँ की आवाज लड़खड़ायी।

–रामगोपाल?

–जी, मैं। बड़े दादा बोले।

–हरिशरण?

–जी, मैं। छोटे दादा ने कहा।

–राधेश्याम?

–मैं हूं। मेरे अंदर का शहर कुलबुलाने लग गया था।

–क्या आप लोगों ने जमीन अपनी मर्जी से बेची है?

–जी। बड़े दादा ने उत्तर दिया।

–कितने में?

–चार हजार नौ सौ पचास में।

–आप लोगों को रुपये मिल गये?

–जी, मिल गये।

–अब आप लोग जा सकते हैं। साहब कुर्सी की पीठ पर पसर गये।

हम लोग बाहर आ गये। हमारे साथ वाला कारिंदा चबूतरे पर बैठा कागज के टुकड़े पर कुछ लिख रहा था। बड़े दादा उसकी बगल में बैठ गये। मैंने छोटे दादा से पूछा–अब हम लोग जा सकते हैं न? उन्होंने मेरी तरफ ध्यान से देखा। अंग्रेजी में बोले कि वह भी सब कुछ से काफी ऊब गये हैं... मैंने जैसे खुद को सांत्वना देते हुए कहा– चलिए, यह आखिरी ऊब है...वह हँस पड़े। खासी फीकी-सी हँसी। गोया मुझ पर तरस खा रहे हो कि बच्चू, इस ऊब को तो आखिरी कह रहे हो, बाकी रोजमर्रे की ऊबों का क्या करोगे? मैं खिड़की में से टाइपिस्ट लड़की को देखने लगा।

यह कारिंदा कागज का टुकड़ा बड़े दादा के आगे करके उन्हें समझाने लगा– इब्बू से लिया हुआ पैसा, एक हजार छह सौ। दो साल का ब्याज, आठ रूपये सैकड़ा। हर महीने की दर से तीन हजार बहत्तर। मेरी फीस, पचास रुपये। साहब को दिये हुए साठ रुपये, दफ्तर वालों को, आठ रुपये। कुल चार हजार आठ सौ दस रुपये। बकाया एक सौ चालीस तुम्हें मिलने हैं। उसने अपनी फैली हुई जेब में से टटोल कर नोटों की गड्डी निकाली और दस-दस के चौदह नोट गिन कर बड़े दादा के हाथ में पकड़ा

दिये। मैंने देखा, रुपये लेते हुए बड़े दादा के चेहरे पर काली-सी झांई थरथरा उठी है। इस बीच वह कारिंदा फिर जुगली करने लग गया था। बड़े दादा ने रुपये जेब में रख लिये। कारिंदे ने कहा– तुम लोग जाओ...छह बजे आखिरी बस है, उससे चले जाना। मुझे थोड़ा काम है। मैं कल शाम तक घर पहुँचूँगा।

हम लोग धीरे-धीरे चलकर बस अड्डे पर आ गये। रास्ते भर कोई किसी से कुछ नहीं बोला। माँ ने सिर्फ इतना कहा– मेरी आँखों के सामने ही तुम्हारे पिताजी भी चले गये...उनकी जमीन भी चली गयी। उनका गला भर आया था। इस पर भी किसी ने कुछ नहीं कहा।

बस स्टैंड पर बैठे-बैठे सात बज गये। छह बजे वाली बस नहीं आयी थी। माँ ने इस बीच दो बार पानी पिया। माला फेरती हुई बैठी रहीं। बारी-बारी से मैं और छोटे दादा इधर-उधर जाकर बस के बारे में दर्याफ्त कर आये। और लोग भी हमारी तरह थे। किसी ने बताया, बस कहीं रास्ते में खराब हो गयी होगी। न भी आये तो कोई बड़ी बात नहीं।

बड़े दादा की परेशानी बढ़ गयी। माँ को आराम की जरूरत थी। बस नहीं आयेगी तो रात को साढ़े ग्यारह बजे मेल मिलेगा। मौसम खराब है। रात में हल्की-सी ठंड पड़ने लगती है। माँ को परेशानी होगी। क्या किया जाय? वह बड़बड़ाने लगे।

साढ़े आठ बज गये थे। कस्बे का मामूली-सा अस्तित्व जैसे रात भर के लिए अंधेरे में खोता जा रहा था। अड्डे नी इक्के-दुक्के लोग ही रह गये थे। मैंने सुझाया, स्टेशन चलेंगे। माँ निढाल हो रही थीं। स्टेशन कस्बे के बाहर था। लगभग सुनसान इलाके में। हम लोगों ने ताँगा कर लिया। ताँगे में बैठने से पहले बड़े दादा ने अपने लिए बीड़ी का बंडल और माचिस ली। एक दर्जन केले खरीद कर झोले में रख लिये। स्टेशन पर कुछ भी तो नहीं मिलता है... माँ ने दोपहर को कुछ नहीं खाया है..वह बोले।

स्टेशन बहुत छोटा-सा था और उजाड़ था। टिकटघर और स्टेशन मास्टर के कमरों में मद्धिम-सी रोशनी थी और कहीं रोशनी का नाम नहीं था। प्लेटफार्म उन दोनों कमरों जितना ही फैला हुआ था जिस पर टीन की छत थी। प्लेटफार्म के इधर-उधर काफी जगह थी, मगर खुली हुई। वहां भी रोशनी नहीं थी। प्लेटफार्म पर अनाज के या किसी चीज के भरे बोरे पड़े हुए थे, बेतरतीब। छत के नीचे की सारी जगह उन्हीं से घिरी हुई थी। शायद एक कोने में किसी और चीज के बोरे पड़े हुए थे जिनसे एक तरह की तीखी बदबू आ रही थी। मैंने सोचा, शायद कच्चे चमड़े के बोरे होंगे। उस बदबू में वहाँ बैठना संभव नहीं था, खासकर माँ के लिए इसलिए, एक तरफ खुले में बैठने के

सिवा कोई चारा नहीं था। माँ की बाँह पकड़ कर उन्हें रास्ता दिखाते हुए छोटे दादा चलने लगे। बड़े दादा ने दस रुपये का नोट निकाल कर मुझे दिया, टिकट खरीदने के लिए। टिकटघर में बाबू सो रहा था। मैंने स्टेशन मास्टर से जाकर पूछा। उसने बताया, ग्यारह बजे टिकट मिलेगी। मैंने पूछा–यहाँ कोई वेटिंग-रूम नहीं है? उसने गर्दन उठाकर मेरी तरफ देखा। मेरी पतलून पर नजर डाली। गर्दन झुका ली। मुझे उसका रुख अच्छा नहीं लगा। मैंने अंग्रेजी में कहा–यात्रियों को असुविधा होती है। उसने दुबारा मेरी तरफ देखा। अंग्रेजी में ही बोला–चुनाव लड़कर मंत्री बन जाइए, फिर इस पर सोचिए उसने ठहाका लगा दिया।

माँ शाल ओढ़ कर दुबकी बैठी थीं। मैंने कहा–अभी गाड़ी आने में काफी देर है, माँ के सोने का इंतजाम होना चाहिए।

बड़े दादा बोले–सो कैसे सकती हैं, बिछाने के लिए कुछ भी तो नहीं है।

माँ बोलीं–मैं ठीक हूं, तुम लोग फिकर मत करो। हम लोग भी माँ के साथ जमीन पर बैठ गये।

हम लोगों से थोड़ा-सा हटकर कुछ लोगों की आवाजें आ रही थीं हंसने की, बातें करने की। मैंने ध्यान से देखा। अंधेरे में किसी का चेहरा नजर नहीं आ रहा था। मैं उठ कर उन लोगों के पास गया। कोई छह-सात लोग एक-दसूरे की बगल में लेटे बातें कर रहे थे। मेरी आहट पाकर वे चुप हो गये। मैंने झुक कर उनकी तरफ देखने की कोशिश की। फिर भी किसी का चेहरा साफ नजर नहीं आ रहा थ। मैंने पूछा–क्या आप लोग भी गाड़ी के लिए बैठे हैं?

एक ने कहा–नहीं, हम तो यहीं के हैं। रेलवे लाइन का काम चल रहा है न, दिन में काम करते हैं, रात को यहीं सोये रहते हैं।

मैं उन लोगों के पास उकड़ूँ बैठ गया। पूछा –मेल कितने बजे आयेगा?

–बारह बजे तक आ जायेगा।

–बारह तक?

–आपको कहाँ जाना है? उनमें से तीन-चार लोग उठ कर बैठ गये थे।

–यही, चार-पाँच स्टेशन छोड़ कर, उधर।

वे लोग चुप हो गये। मैं बोला–मेरे साथ माँ और दो भाई भी हैं...बस से जाना था...बस नहीं मिली... माँ की तबीयत ठीक नहीं है.. हमारे पास कपड़े भी नहीं है...

मेरी बात सुन कर एक आदमी झट से उठ बैठा। अपने सिरहाने तह करके रखी हुई सुजनी मेरी तरफ बढ़ायी। बोला–यह लीजिए, किसी न किसी तरह थोड़ा समय ही तो काटना है। मैं धन्यवाद देकर वहां से उठा। सुजनी दुहरी तह करके जीमन पर बिछायी थी। बड़े दादा ने केले निकाल कर माँ को दिये। उन्हें शायद भूख लग रही थी। केले खा लिये। शाल ओढ़ कर सुजनी पर लेट गयीं।

हम तीनों ने भी केले खाये। वे मजदूर लोग उसी तरह बातें कर रहे थे। बीच-बीच में ठहाके लगा रहे थे। कहीं दूर पर कुत्तों के भूँकने की आवाजें आ रही थीं। आसमान पर इधर-उधर तारे टिमटिमा रहे थे। मौसम में कुछ खुनकी बढ़ गयी थी।

बड़े दादा ने बीड़ी सुलगा ली। उन लोगों में से किसी ने बीड़ी सुलगा ली। मैंने आवाज कुछ ऊंची करके उन लोगों से पूछा–आप लोगों में से किसी को बीड़ी-वीड़ी तो नहीं चाहिए? मुझे लगा, बहुत बेहूदे ढंग से कृतज्ञता दिखा रहा हूँ। उनको बीड़ी चाहिए नहीं थी।

बड़े दादा ने मुझसे पूछा–छोटू, कितने दिन की छुट्टी ले आये हो?

–कल रात की गाड़ी से चले जाना है...

–और तुम? उन्होंने छोटे दादा से पूछा।

–मैं भी कल-परसों में चला जाऊंगा।

–तुम लोगों को किराए के पैसे चाहिए न? वह बोले।

–नहीं, मेरे पास हैं। मैं बोला। छोटे दादा ने कहा–उनको भी नहीं चाहिए।

–इन एक सौ चालीस में से तुम लोग भी ले सकते हो।

मैंने उस अंधेरे में ही उनका चेहरा देखने की कोशिश की। मुझे कुछ नजर नहीं आया। उनकी आवाज के कंपन के सिवा।

मैं बोला रुक-रुक कर–बड़दा, आप फिकर मत कीजिए... अच्छे दिन आयेंगे...।

वह कुछ नहीं बोले। बीड़ी का टोंटा फेंक दिया।

कहीं किसी मुर्गे को गलतफहमी हो गयी थी। वह बांग देने लगा। सबेरा होने से पहले ही सवेरे की उतावली में।

पास के लोगों में से किसी ने पूछा–बाबूजी, कै बजे हैं?

मैंने माचिस जला कर घड़ी देखी। पौने दस, मैंने आवाज दी।

उन लोगों को नींद नहीं आ रही थी। किसी बात पर खिलखिलाकर हँस पड़े। थोड़ी देर बाद चुप्पी छा गयी। आस-पास की झाड़ियों में झींगुर बोल रहे थे। उन लोगों में से किसी ने कहा- अबे अब शुरू तो कर.... साला हर रात सताता है.... इसके साथ ही तीन-चार लोगों की आवाजें एक साथ आयीं -हाँ यार, अब शुरू कर। उनमें से किसी ने हमारी तरफ आवाज फेंकी-बाबूजी, आप लोग तो पढ़े-लिखे हैं... कोई कहानी-वहानी सुनाइए... गाड़ी के आने तक वक्त कट जायेगा....

मैंने जवाब दिया-हममें कोई कहानी-वहानी नहीं जातना।

-ऐ दुर्गा, तू सुना... सुनोगे बाबूजी? उनमें से एक बोला।

-जरूर।

थोड़ी देर खामोशी बनी रही। आसमान साफ हो गया था। तारों की संख्या बढ़ गयी थी। शायद दुर्गा बोल उठा- तो सुनिए बाबूजी..यह कहानी मैंने बचपन में अपने दादा से सुनी थी... उनको उनके नाना ने सुनायी थी।

किसी ने आवाज कसी- अबे नाना के बच्चे, कहानी तो सुना...

दुर्गा ने गला साफ किया। आवाज बुलंद की। कहने लगा-एक गाँव में एक आदमी रहता था... बहुत गरीब...

उन लोगों में से किसी ने फब्ती कसी-तेरे से भी? एक जबरदस्त ठहाका लगा। दुर्गा नाराज हो गया-साले, तू बीच में बोलेगा तो मैं कहानी ठेंगा सुनाऊंगा...

-अबे चुप रह, बीच में बोलता क्यों है?

दुर्गा ने कहानी शुरू की-हाँ, तो वह बहुत गरीब था। एक दिन वह काम-धाम की खोज में निकल पड़ा पैदल। बारह-तेरह बरस का रहा होगा। रास्ते में भूख लग आयी। रात को भी कुछ नहीं खाया था। पर करते क्या? ऐसे ही चलते रहे। चलते-चलते दिन ढलने लगा। रास्ते में दोनों ने तीन-चार जगह पानी पिया। और इसी से संतोष कर लिया। फूटी कौड़ी तो पास में थी नहीं, जो कुछ खरीद कर खा लेते।

बड़े दादा को शायद कहानी अच्छी लग रही थी।

दुर्गा बोले जा रहा था-बाप-बेटा किसी गाँव के पास पहुँचे। गाँव के बाहर कोई मेला लगा हुआ था। नगाड़े-तुरही की आवाजें आ रही थीं। लड़के के कान खड़े हो गये। उसने अपने बाप से पूछा। आवाज बाप ने भी सुनी थी। बोला, कोई मेला होगा। मेले की बात सुनकर लड़का मचलने लगा। बाप का हाथ पकड़ कर बोला, बापू मेला

देखते चलेंगे। उन्हें उसी तरफ जाना था। बाप मान गया। बाप-बेटा उधर ही चल पड़े। थोड़ी देर बाद मेले में पहुँच गये। बहुत भारी मेला लगा था। तरह-तरह की चीजें बिक रही थीं। तरह-तरह के खेल-तमाशे हो रहे थे। बाप ने लड़के को सारे मेले में घुमाया। बेचारा लड़का नदीदी आँखों से देखता रहा। शाम हो गयी तो बाप ने लड़के का हाथ पकड़ लिया। बोला, चल, शाम हो रही है, जल्दी पहुँचना है। पर लड़के को मेले में मजा आ रहा था। वह अपने बाप का हाथ पकड़े हुए इधर-उधर देखता हुआ मलने लगा।

-अब वहीं एक कोने में, एक पेड़ के तने से आठ-दस ऊँट बंधे हुए थे। लड़के की निगाह ऊँटों पर पड़ी। उसने इतने सारे ऊँट इकट्ठे कभी नहीं देखे थे। उसने बाप का हाथ पकड़ लिया। बोला, बापू उन ऊँटों को देखते चलेंगे। बाप लड़के को लेकर ऊँटों की ओर चला।

दुर्गा को शायद तलब लग गयी थी। उसने कहानी रोक कर बीड़ी सुलगा ली। दो-तीन सुट्टे मारे। बाकी टुकड़ा अपने साथी को पकड़ा दिया। फिर कहानी शुरू की-हाँ, तो वे दोनों ऊँटों के पास पहुँचे। ऊटों वाला ऊँट बेच रहा था। ऊँची आवाज में कह रहा था-ऊँट ले लो...ऊँट बीकानेरी ऊँट ... गाड़ी खिंचवा लो..रहट चलवा लो... जमीन जुतवा लो... सवारी कर लो... ऊँट ले लो... दो-दो आने का...ऊँट ले लो...

दुर्गा का कोई साथी ठठा कर हँस पड़ा-साले की हर कहानी ऐसी ही होती है.... अबे, दो आने में कहीं ऊँट मिलता है?

-अबे चुप... बीच में बकवास मत कर... वरना तेरी अकलमंदी पीछे-से निकल देंगे। तीन-चार लोगों ने टोकने वाले को एक साथ डाँटा। वह चुप हो गया। छोटे को नींद आ रही थी। वह बैठे-बैठे इधर-उधर होने लगे। बड़े दादा ने एक बीड़ी सुलगा ली। मैंने आसमान की तरफ देखा।

दुर्गा ने फिर कहना शुरू किया-तो क्या बता रहा था मैं? हाँ... तो ऊँट वाला चिल्ला रहा था, दो-दो आने का एक ऊँट...दो-दो आने का ऊँट... लड़के ने ऊँट का दाम सुना तो उसके मुँह में पानी भर आया। खुशी के मारे उसके पैर जमीन पर टिक नहीं रहे थे। सोचने लगा, हमारे पास ऊँट होता तो दिन भर हम पैदल क्यों चलते? आराम से उस पर बैठ कर चले जाते। उसने बाप का हाथ पकड़ कर खींचा और कहने लगा-बापू, एक ऊँट ले लो.... हमारे बहुत काम आयेगा। बाप ने लड़के को समझाया, बेटे पैसे नहीं हैं। लेकिन कहाँ मानने लगा। मचल गया, बापू एक ऊँट खरीद दो। अब बाप को गुस्सा आ गया। उसने लड़के का हाथ पकड़ कर खींचते हुए झिड़क दिया-अबे

चुपचाप चल, ऊँट कहाँ से खरीदेगा? कल से खाना नहीं खाया।

चलते-चलते बाप-बेटा काफी दूर चले गये। बाप आगे-आगे चल रहा था। लड़का पीछे-पीछे, लड़का बहुत थक गया था। बेचारे का चेहरा लटक आया था। उसकी आँखों के आगे ऊँट ही दिखाई पड़ रहे थे। एकाएक लड़के को अपने पैरों के पास कोई चीज दिखाई पड़ी। चमकदार चीज। लड़के ने झुक कर उठा ली। कमीज से उस पर की धूल साफ की। वह और ज्यादा चमकने लगी। लड़के ने बाप को आवाज दी-बापू,यह देखो, कोई चीज मिली है। बाप ने पीछे मुड़ कर देखा। बाप ने उलट-पलट कर देखा। बोला-बेटे, यह तो हीरा है। लड़का समझा नहीं, बोला-वह क्या होता है, बापू? बापू ने बताया-हीरा कीमती चीज होता है बेटे। बाप को बहुत खुशी हो रही थी। बेटे ने पूछा- यह कितने में बिकेगा बापू? बापू ने दुबारा उलट-पुलट कर देखा। सोच कर बोला-यह तो पाँच सौ का है बेटे। पाँच सौ। तो मुझे कई ऊंट दिला दो न बापू। लड़का तरसने लगा। बाप को बेटे पर दया हो आयी। बोला, चल तेरे लिए एक ऊँट खरीद देता हूँ। बाप-बेटा भागे-भागे मेले में लौट आये। मेला उठ रहा था। लोग बाग अपने-अपने घरों की तरफ चल रहे थे। लड़के ने उछलते हुए एक ऊँट चुन लिया। बोला, वह वाला खरीद दो बापू। बाप को भी वह ऊँट पसंद आया। उसने ऊँट वाले के हाथ में हीरा रख दिया। बोला-भय्या, वह वाला ऊँट दे दो और बाकी पैसे भी। ऊँट वाले ने हीरे को ठोंक-पीट कर देखा, बोला-यह क्या है?-यह हीरा है, बाप ने कहा-इसमें ऊँट कैसे खरीदोगे? ऊँट वाले ने पूछा। अरे, यह तो पांच सौ रुपये का हीरा है... तुम्हारा ऊँट तो दो आने का है। दे दो वह वाला ऊँट... जल्दी से .... बाकी पैसे भी लौटाओ।

-ऊँट वाले ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए उस गरीब आदमी के हाथ में हीरा वापस रख दिया। गुस्से में बोला-क्या बक रहे हो.... अभी दस मिनट पहले ही रामपुर के राजा ने एक हजार रुपये में मेरा एक ऊँट खरीदा है... मैं तो अब हजार रुपये का ही ऊँट बेचूंगा....

-यह बात सुन कर बेचारे लड़के की साँस रुक गयी। उसके बाप को भी बहुत दुख हुआ। उसे गुस्सा भी आया। लेकिन करता क्या? वह अपने लड़के का हाथ पकड़े चुपचाप आगे बढ़ गया, हीरे को मुट्ठी में बांधे। भूखे बाप-बेटे पैर घिसटते हुए चलने लगे।

-बस, यही है कहानी। दुर्गा चुप हो गया।

थोड़ी देर चारों तरफ मुर्दानी छायी रही। कुछ देर बाद उन लोगों में से किसी ने पूछा-यार दुर्गा, कहानी तो ठीक है... पर ...तू यह बता, दो-दो आने में बिकने वाले ऊँट को उस राजा ने एक हजार रुपये में क्यों खरीदा था? क्या उस राजा को...यार उस राजा को इस बात का पता लग गया था कि वह गाँव का गरीब लड़का भी ऊँट खरीद लेगा?

किसी और ने सवाल का समर्थन करते हुए पूछा-हाँ, दुर्गा, उस राजा ने ऐसा क्यों किया था?

दुर्गा ने इस बीच बीड़ी सुलगा ली थी। बड़े दादा ने भी। कश खींचता हुआ दुर्गा बोला- मैं क्या जानूं, यार... मुझे क्या पता, राजा ने दो आने का ऊँट एक हजार में क्यों लिया था?

-मैं जानूँ... मैं जानता हूँ...बड़े दादा ने पूरी ताकत के साथ बीड़ी जमीन पर दे मारी और जोर-जोर से चिल्लाते हुए उठ कर खड़े हो गये, जैसे बौखला गये हों। उनका जिस्म काँप रहा था।

मैंने कस कर उनकी बाँह पकड़ ली। उन्हें जैसे समझाते हुए धीरे से बोला-बड़दा, आप धीरज रखिए... ये लोग... ये सब लोग भी ... आप ही की तरह जान जायेंगे... बड़े दादा अब भी काँप रहे थे। पता नहीं क्यों मेरी आँखे डबडबा आयी थीं। अँधेरे में ही मैंने बायें हाथ से आँखें पोंछ लीं।

पिछले स्टेशन से रेल के छूटने की घंटी बज उठी, अँधेरे को चीरती हुई-टन्...टन्...।

छोटे दादा माँ को जगाने लग गये थे-माँ, उठो, गाड़ी आ रही है। कहीं दूर पर मुर्गा बाँग देने लग गया था।

इब्राहिम शरीफ़

जन्म : 1939 नेन्दलूर कड़पा (आंध्र)

प्रमुख कृतियाँ : कई सूरजों के बीच, ज़मीन का आखिरी टुकड़ा (कहानी संग्रह)

दिवंगत

फ़र्क

–इसराइल

थोड़े दिन पहले ही इशापुर गाँव में खेत–मजदूरों और किसानों का संगठन बना था। भूदानी नेता बेनी बाबू ने घर–घर घूमकर किसानों से अपील की थी कि तुम लोग अब किसी संगठन या झण्डे के नीचे क्यों जाओ! मैंने जमींदार से पूरा गाँव भूदान में ले लिया है, इसलिए अब बेदखली का सवाल ही नहीं उठता। जयप्रकाश बाबू जल्दी ही आने वाले हैं और 'आदर्श सर्वोदयी गाँव' की नींव पड़ने वाली है। लेकिन गाँव के लड़कों ने उनकी बात नहीं मानी थी। जब से खेत–मजदूरों और बटाईदारों के एक–आध लड़के पढ़ने लगे हैं, तब से वे किसी की बात नहीं मानते। इसीलिए 'आदर्श सर्वोदयी गाँव' का उद्घाटन–समारोह टलता गया था और उस दिन उनके कलेजे को गहरी चोट लगी थी, जिस दिन भगलू बटाईदार के लड़के विशू ने कह दिया था–बेनी बाबू, आपको कोई दूसरा गाँव नहीं मिलता जो आप जमींदार साहब से ले लें। हम गरीबों के पीछे हाथ धोकर क्यों पड़े हैं? आपको चुनाव लड़ना नहीं है, तब आप क्यों इस झमेले में पड़ रहे हैं? शिवजी बाबू खेत आपको दान देंगे, बोएँगे किसान और फसलें होने पर शिवजी बाबू के गुंडे बंदूक लेकर आएँगे और फसल काटकर ले जाएँगे। ठीक उसी समय आपका आविर्भाव होगा और फसल के दूसरे छोर पर लाठी, तीर, भाला, गँड़ासा लिये खड़े किसानों के सामने आप छाती खोलकर पड़ जाएँगे कि पहले मुझको मारो, मैं जिन्दा रहते हिंसा नहीं होने दूँगा। आप बौखलाती भीड़ को हिंसा–अहिंसा पर चौपाई सुनाएँगे और इस क्षणभंगुर संसार के मायाजाल में न फँसने तथा अहिंसा के द्वारा ही आसुरी शक्तियों को पराजित करने की रामधुन गायेंगे। तब

तक जमींदार के गुण्डे हवाई फायर करते हुए फसल लेकर चले जायेंगे। फिर आप संतोष की लंबी साँस खींचते हुए शहर चले जाएँगे अपने बड़े नेताओं को बताने कि अहिंसा के ब्रह्मास्त्र से मैंने आज एक दानवी हिंसा पर विजय प्राप्त कर ली है और बहुत बड़े खून–खराबे को रोका है। दूसरे दिन फिर आप जमींदार की देहरी पर पहुँचेंगे और सत्संग होगा। नेताओं और अफसरों के इस अहिंसक विजय–समारोह में बगल का गाँव भी आपको दान में मिल जाएगा। आप वहाँ भी खून–खराबा रोकने के लिए पहुँच जाएँगे। आपकी यह लीला अनन्त है बेनी बाबू, और इस अंनन्त की चक्की में हम गरीब पिस गए हैं–आप हमें क्षमा करिए। हम गरीबों को हमारी ही हिंसा पर छोड़ दीजिए। कम से कम अपनी फसल की रक्षा ही हम कर लेंगे, जिससे साल भर भूखों मरना नहीं पड़ेगा।

इस लड़के ने उनकी आत्मा हिला दी थी। बेनी बाबू अगर गलती से भी उस गाँव से गुजरते तो लड़के 'भूदानी जा', 'भूदानी जा' के नारे लगाकर चिढ़ाने लगते थे।

बिशू, भगलू बटाईदार का लड़का है। भगलू अपना पेट काटकर बिशू को पढ़ा रहा है। बिशू के साथ इसी गाँव के दो लड़के और हैं जो पढ़ रहे हैं। बेनी बाबू ने थाने–भर में कह दिया है कि इशापुर के कच्ची उम्र के लड़कों में दायित्वहीन उत्साह है। वहाँ के बड़े–बूढ़े उन्हें रोकते नहीं। किसी दिन सब भारतीय आदर्श उस गाँव में धराशायी हो जाएँगे, तब हम क्या कर सकते हैं? हमारी जनम–जनम की साधना पराजित हो जाएगी। यह कर्मभूमि मरणभूमि में बदल जाएगी। यह सब मुझसे नहीं देखा जाएगा। मैंने उस गाँव में जाना छोड़ दिया है। अब उस गाँव में उन तत्त्वों का आवागमन प्रारंभ हुआ है, जो उपद्रवी हैं, हिंसा में विश्वास करते हैं। इशापुर गाँव में अब प्रभातफेरी नहीं होती, शाम को लाल झंडा लेकर जुलूस निकलता है। जो नारियाँ एक दिन भी प्रभातफेरी में नहीं आईं, रामधुन नहीं गाया, वे जुलूस में जा रही हैं, इन्कलाब गा रही हैं। धर्मचर्या के बदले विलास होता है। बजरू अहीर, जो भैंस चराता था और समझता था कि डेढ़ गज चौड़ी भैंस की पीठ ही पृथ्वी की चौड़ाई है, जिसकी दुनिया सिमट कर भैंस की पीठ पर चली गई थी, वह अब नेता बन गया है और भाषण देता है। उस दिन वह कंधे पर लाठी लिए सड़क पर मिल गया। मैंने कहा–''बजरू, यह लाठी लेकर घूमना अच्छी बात नहीं है।'' वह कहने लगा कि, ''बेनी बाबू, मैं तो बचपन से ही लाठी लेकर घूमता हूँ।'' मैंने उसे समझाया, ''तब तुम भैंस को मारने के

लिए यह लाठी रखते थे, अब आदमी को मारने के लिए इसे लेकर घूम रहे हो, बजरू, बहुत फर्क आ गया है, बहुत। अगर इतनी समझदारी आ गई है कि तुम भैंस की पीठ पर से जमीन पर उतर आए हो तो कुछ और सोचो।'' लेकिन वह नहीं माना। कहने लगा, ''जितना सोचूँगा, लाठी उतनी ही मोटी होती जाएगी बेनी बाबू! अब मैंने भैंसों की संगत छोड़कर आदमियों की संगत पकड़ ली है।''

बेनी बाबू आगे बढ़ना ही चाहते थे कि सड़क के चौमुहाने से बिशू ने उन्हें पुकारा, वे ठहर गए। यद्यपि वे जानते हैं कि यही लड़का खुराफ़ात की जड़ है, लाल झण्डा के नेताओं को बुला लाता है और कहता है कि खेत-मजदूरों का नेता खेत-मजदूर ही होगा, कोई भूदानी या ज्ञानदानी नहीं। इसीलिए उसने बजरू चरवाहे को नेता बना दिया और ग्वाला-कुल में हलचल मचा दी। सब चमार, दुसाध, डोम, हलखोर, जोलहा, धुनियाँ, कोइरी, कोहार, अहीर-बिलार एक हो गए हैं। कहते हैं, बजरू ही हमारा नेता है, इस बजरू की डुगडुगी कोसी की पंकिल घाटियों में बजने लगी है। हालत इतनी नाजुक है कि ऊँची जातियों के कुछ सिरफिरे लोग भी इनका साथ दे रहे हैं। उस दिन ढोलबज्जा में इन्होंने पाँच हजार नंग-धडंगों का प्रदर्शन किया था, नवगछिया में तो बीस हजार का अस्त्र-प्रदर्शन। बेनी बाबू ने सोचा कि इस लड़के को अहिंसा के लिए राजी कर लिया जाए तो शायद खौलती हुई भीड़ को रोका जा सकता है, क्योंकि उन्हीं के बीच का पढ़ा-लिखा यह बच्चा उनका सबसे अधिक विश्वासपात्र है। इसलिए बिशू के हाथों एक बार अपमानित होने पर भी उसके पुकारने पर वे रुक गए। बिशू के करीब आने पर मुस्कराये और कहा, ''तुम लोग इस बजरू को एम.एल.ए. बनाकर ही छोड़ोगे। जिस तरह की जमीन तैयार कर ली है, उससे हुआ ही समझो।''

बिशू के बोलने से पहले ही बजरू बिगड़ गया; कहा, ''पंडितजी, हम लोग इस एमेलेपन पर थूकते हैं।''

लेकिन बिशू ने आगे बढ़कर बात सँभाल ली, ''पंडितजी, जरूरत पड़ी तो वह भी बना लेंगे, मगर हमारा उद्देश्य एम.एल.ए. बनना-बनाना नहीं है।''

बेनी बाबू ने बात रोक ली; सोचा, लड़का समझदार हो रहा है, कहा, ''सचमुच इन सत्तालोभियों और सत्ताभोगियों की कतार में शामिल नहीं होना है। यह सत्ता ही संपूर्ण विग्रह की जन्मदायिनी है; इससे जितना दूर रहो, उतना ही भला। देखते नहीं, मैं चुनावों में तटस्थ रहा करता हूँ, मैं तो निर्विकारचित सेवी हूँ।'' अब बात बिशू के लिए

असह्य होती जा रही थी। उसने कहा, ''पंडितजी, मगर हम इतना निर्विकार नहीं बन पाएँगे। हम यह समझ गए हैं कि इसी सत्ता ने हमारा सबकुछ छीन लिया है, इसलिए सत्ताभोगियों के हाथ से इस सत्ता को छीन लो।''

बेनी बाबू सकपका गए, ''यह तो हिंसा का पथ है और हिंसा के लिए दानवी युद्ध का हुंकार। तुम लोगों को पुनर्विचार करना चाहिए। आसुरी शक्तियाँ देवत्व के सामने ही पराजित होती है, अतः कर्म का आचरण देवता तुल्य ही होना चाहिए। स्थिति में द्रवित मैं भी हूँ, लेकिन।

बिशू ने संजीदगी से कहा, ''यही बात जरा जमींदार साहब, बीडीओ साहब और दारोगा जी को समझाइए।''

बेनी बाबू ने कहा, ''यही तो वे आसुरी शक्तियाँ है, जिनके विरुद्ध हमें आध्यात्मिक स्तर पर संघर्ष करना है। भौतिकता से संघर्ष में हमारे अस्त्र आध्यात्मिक ही होंगे, क्योंकि सत्य हमारे साथ है और सत्य की प्राप्ति का संघर्ष यदि कुरूप हुआ हो तो सत्य भी कुरूप हो जाएगा। इसलिए हमें सावधान होकर ही सत्य के पथ पर लड़ना है। बच्चों, हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया बड़ी पीड़ादायिनी और दीर्घ होती है। साधना में उतावलापन कैसे?''

बजरू तब तक बुरी तरह खीझ गया था, ''भूदानी जी, यह सत्त-फत्त अपनी झोली में रखिए, हमको भरोसा अब अपनी लाठी पर है। जाकर उस जमींदार के बच्चे से कह दीजिए, हम उसकी एक नहीं चलने देंगे, हमने दो सौ बीघे जोत लिए हैं, धान भी काटेंगे। उसको आप अहिंसा पढ़ाइए, वह हमारा धान लूटने आएगा तो कोसी बहेगी खून की। हम किसी को मारने नहीं जा रहे हैं, लेकिन हमें कोई मारने आएगा तो हम उसे छोड़ेंगे नहीं।''

इन बातों से बेनी बाबू को पसीना आ गया। सोचने लगे कि हमारी साधना-भूमि छूटी जा रही है। अगर यही हाल रहा तो आश्रम वन-भूमि होगी। जब मनुष्य से वितृष्णा हो जाती है तो आदमी खूँखार जंतुओं के सहवास में जंगलवास चला जाता है। लेकिन बिशू को सामने खड़ा देखकर उन्होंने वनवास की कल्पना त्याग दी और बजरू भी अपनी लाठी पटकता वहाँ से चला गया।

बेनी बाबू ने समझा कि जो हिंसा वातावरण पर चढ़ आई थी, अब उतर गई है।

बिशू से पूछा, ''अच्छा, वह जहर-वहर की क्या बात है?''

बिशू बताने लगा, ''हमने तो एतराज किया, मगर गाँव के बूढ़े उछल पड़े। उन्होंने समझा कि बहुत दिनों के बाद गाँव में मिठास की हवा बही है। तीन दिनों तक हमारे प्रबल विरोध के बावजूद बूढ़ों ने दावत स्वीकार कर ली। हंडे चढ़ते गए, भोग बनने लगा, लेकिन यह खबर भी फैल गई कि बिशू नहीं खाएगा। भोज के एक दिन पहले रात को जब बजरू काका के दरवाजे से अपने घर जा रहा था तो रास्ते में एक सफेद छाया ने मुझे रोक लिया। अँधेरे में चेहरा तो मैं नहीं पहचान सका, मगर आवाज पहचान ली। उसने मुझे रोक कर कहा, 'बिशू, सुना है तुम नहीं खाओगे।' यह बहुत बुरा होगा, व्यवहार में होगा यह कि मौके पर आधा गाँव नहीं खाएगा।'' शायद मैं खा भी लेता और मर भी गया होता। लेकिन आप तो जानते हैं, भोज चाहे जमींदार का ही हो, कारिंदे तो हमारे ही लोग होते हैं। ऐन मौके पर यह खबर फैल गई कि मुझे जो शर्बत दिया जाएगा, उसमें जहर होगा। फिर क्या था! पूरी बात ही रह गई। कोई भी खाने नहीं गया। गाँव की औरतें सिर पीटने लगीं। उस दिन हमारी माँओं ने हमें आँचल में छिपा लिया था, यह कहकर कि साँप ने डँस लेना चाहा था। क्या सच है, मुझे उससे कुछ लेना-देना नहीं, मैं तो सिर्फ इतना जानता हूँ कि एक विशद दानवीय षड्यंत्र हमारे खिलाफ चल रहा है, यह जहर उसी की एक बूँद थी। लेकिन पंडित जी, आपकी हिंसा-अहिंसा की कसौटी पर यह जहर किस ओर जाता है? उसने बिना खून-खराबे के मुझे खत्म करना चाहा था।

बेनी बाबू ने बिशू को कोई जवाब नहीं दिया। 'हरि ओऽम्', भगवान् रक्षा करें। जहाँ मैंने बीस वर्षों तक तपस्या की, मेरी इस कर्मभूमि की यह दुर्दशा। और वे आकाश की ओर देखते हुए वहाँ से चले गए।

बरसात शुरू हो गई थी। कोसी की बेगवती धारा में इलाका डूबता जा रहा था। धान की फसल भी डूब रही थी। किसानों ने किसान-सभा के नेतृत्व में दो सौ बीघे जमीन पर कब्जा कर खेती शुरू की थी। दिन-रात का पहरा खेतों पर लगा हुआ था। बेनी बाबू साँपों के उत्पात से गाँव छोड़कर शहर चले गए थे और शहर के आश्रम में ही रह रहे थे। उन्हें गाँव से जो खबर मिलती थी, वह संघर्षों की ही होती थी। उन्होंने सुना था कि इशापुर गाँव लगभग आधा उजड़ गया है और गाँव के आधे से अधिक लोग गिरफ्तार होकर जेलों में हैं, तीन मारे गए हैं, पन्द्रह इसी बगल के अस्पताल में पड़े हैं। बिशू और बजरू का नाम अखबारों में छपने लगा है। वे दस-दस हजार के जुलूसों का नेतृत्व कर रहे हैं। भिण्डा, लखनडीह, पारो आदि गाँवों की सभाओं में भी बिशू भाषण देने लगा है। जमींदार लोग भी जोगबनी और किसनगंज के इलाके से ट्रक से आदमी ला रहे हैं। किसानों ने एलान कर दिया है कि अब हम मुंसिफी मुकदमा लड़ने शहर नहीं जाएँगे, सिर्फ फौज़दारी लड़ने जाएँगे।

बेनी बाबू गठिया-रोग से पीड़ित हो गए हैं। दिन-रात की बरसात में उनके शरीर की गाँठों में सर्दी समा गई है, वे अब चलने-फिरने से भी लाचार हो गए हैं, दंतकथाओं के नायकों की तरह कहानी सुनते हैं-बिशू कोसी की कीचड़-भरी कगारों पर बरसात में दस-दस कोस तक पैदल चलता है और दूसरी सुबह किसी गाँव में 'जबरिया कब्जा करो' अभियान का नेतृत्व करता है। बेनू बाबू के गठिया का दर्द दिन-ब-दिन तेज होता जा रहा। उन्हें लगता है कि बिशू के आंदोलन के घटाव-बढ़ाव के साथ उनके गठिये के दर्द का संबंध हो गया है। यह भी लगता है कि वह आंदोलन बढ़ता हुआ इस शहर तक आएगा। आज शाम को ही उन्होंने अखबारों में बिशू का वह बयान पढ़ा है, जिसमें लखनडीह-काण्ड का वर्णन है कि कैसे जमींदार के गुण्डों और पुलिस ने निहत्थे किसानों पर हमले किए। लेकिन बेनी बाबू के लिए सबसे पीड़ा-दायक खबर वह थी कि जिसमें बताया गया था कि ''विनोबा-नगर' में बजरू ने किसानों की सभा की है और सर्वसम्मत प्रस्ताव पास कर 'विनोबा नगर' का नाम 'लाल नगर' रख दिया गया है और ब्रजेश बाबू की उस भूमि पर भी उन्होंने हल चला दिया है, जिसका दान नहीं किया गया था। वह पीड़ा तब और बढ़ जाती है जब उन्हें याद आता है कि ब्रजेश बाबू उनके असहयोग-आंदोलन के सहयोगी थे।

युद्ध-मोर्चे से आने वाली खबरों की तरह ही चौंका देने वाली खबरें कोसी की हरी वादियों से रोज-रोज आ रही हैं। बेनी बाबू एक स्थल पर आकर निराश हो जाते हैं कि वे फिर कोसी की गोद में लौट नहीं पाएँगे। उनके गठिए का दर्द इतना बढ़ जाता है कि उन्हें अस्पताल में भर्ती होना पड़ता है, वहाँ जाकर वे देखते हैं कि कई परिचित चेहरे घायल अवस्था में पड़े हैं। वे उनसे कहते हैं कि मैं चल-फिर सकता तो तुम लोगों की सेवा करता, पर लाचार हूँ। मेरे हटते ही कोसी का पवित्र जल लाल हो गया है, वहाँ खून की धारा बह रही है, हे राम, यह सब क्या हो रहा है!

रात गहराती है, बेनी बाबू दर्द से कराहते हैं। उनके बगल का किसान भी दर्द से कराहता है। बेनी बाबू उससे कहते हैं, ''गठिया में बड़ा दर्द है भाई, लगता हैं मैं अब फिर उठकर खड़ा नहीं हो पाऊँगा।''

बेनी बाबू के बगल का किसान बीच-बीच में कराह उठता है। वे उसे सांत्वना देते हैं। किसान कहता है, ''पंडितजी, इन दोनों दर्दों में बहुत फर्क है। मुझे मालूम है, आपको कोई चोट नहीं लगी है।''

बेनी बाबू अपना दर्द भूलकर उदास हो जाते हैं। सोचते हैं-बिशू होता तो कहता-'एक दर्द हिंसक है और दूसरा अहिंसक।'

इसराइल

जन्म : गाँव महम्मदपुर जिला-छपरा (बिहार)

प्रमुख कृतियाँ : फ़र्क, रोजनामचा (कहानी संग्रह)

दिवंगत

मुहब्बत

-जगदंबा प्रसाद दीक्षित

जरूरी नहीं है फूला बाई का जिक्र। फिर भी एक बस्ती है, जिसे सबने देखा है। पहली बार मैं भौंचक रह गया था। पुराने मकानों में अजीब-अजीब लोग रहते थे-दूर-दूर से आये हुए लोग। लगता था पिछड़ गये हैं। आगे बढ़ने की लड़ाई में लगे हुए हैं। कुछ लड़कियां थीं, जो वेश्याएं थीं। कुछ लड़के - दलाल थे। दिन भर लोग खामोश रहते थे-सोये हुए। शाम से हलचल शुरू होती थी। पूरी सड़क गाड़ियों, दलालों और ग्राहकों से भरी होती थी। बड़े-बड़े होटलों की बत्तियां चमकने लगती थीं। इनमें पांच या तीन तारे होते थे या किसी में कोई तारा नहीं होता था। तारे दिखाई नहीं देते थे। हम उन्हें सिर्फ महसूस कर सकते थे।

दूर-दूर देशों के लोग यहां आते थे। देखकर पता चलता था कि गोरे हैं। अरब हैं। लोग खास तौर पर अरबों के आने का रास्ता देखते थे। दुकानों, होटलों, लड़कियों और दलालों को अरबों का इंतजार होता था। भिखारियों, बाजीगरों, हिजड़ों को भी अरबों का इंतजार होता था। अपने-अपने कमरों की ऊंचाइयों से अरब लोग नीचे की दुनिया को देखा करते थे। यहां हिजड़े नाचते थे। बाजीगर खेल दिखाते थे। भिखारी औरतें-बच्चे भीख मांगते थे। नटों के बच्चे सर्कस करते थे। हर खेल के बाद एक ही सवाल होता था-गरीब...भूखा...पेट के लिए खाना...अल्ला...रफीक़...रहम कर। सूखे-दुबले-फटेहाल हिंदुस्तानी अपना खाली पेट पीटते थे। औरतें काले-बीमार बच्चे दिखाती थीं। अरब ...रफीक़...रहमदिल अल्लाह के नाम पर ऊपर से नोट फेंकते थे। दुबले काले इंसान उन पर टूट पड़ते थे। सबमें समझौता हो गया था। नोटों को लेकर लड़ाइयां होती थीं...फिर नहीं होती थीं। लेकिन फिर और मांगते थे...अल्लाह के नाम पर ...रफीक...रहमदिल! अब अरब सिर्फ हंसते थे। कभी-कभी काग़ज के टुकड़े फेंकते

थे। भीड़ एक बार फिर दौड़ पड़ती थी।

हम सब लोग खुश थे। यहां रहना जरूरी था। सारी दौलत यहीं थी। सब कुछ यहीं था। सिर्फ रहने की जगह नहीं थी। इसका भी इंतजाम हो गया था। एक कोना था... एक खाट काफी थी। यहीं मैंने फूला बाई को देखा था। पचपन या साठ साल की थकी हुई काली औरत। बालों में बदरंग खिजाब लगया था। बालों की जड़ें सफेद हो रही थीं। कई जगह सफ़ेद बाल छूट भी गये थे। आते-जाते एक बार उसने मुझे गौर से देखा था। दूसरी बार मुसकरायी थी। तीसरी बार उसने आंख मार दी थी। मुझे क्या हुआ था, मालूम नहीं, शायद मैं घबरा गया था। इससे पहले किसी औरत ने ऐसा नहीं किया था। उस दिन से मैं होशियार हो गया था। आते-जाते हमेशा दूसरी तरफ देखता था। लेकिन फिर भी चीजें ठीक नहीं हो रही थी। किसी-न-किसी तरह फूला सामने आ जाती थी-और ज्यादा बनी-ठनी, और ज्यादा थकी हुई। जरा-सा खांसती। फिर आंखों के कोनों से ताकती। वही मुसकराहट। मैं परेशान हो गया था।

मगर लोग अब भी उसी तरह चल रहे थे। सूज़र समंदर में डूब जाता था। पुराने मकानों में लड़कियां बन-ठन कर तैयार हो जाती थीं। टैक्सियां या कारें होटलों में पहुंचा देती थीं। सामने की बड़ी इमारत की बत्तियां चमकती रहती थीं। अमीर हिंदुस्तानियों और अरबों की गाड़ियां वहां जरूर आती थीं। यह इमारत होटल नहीं थी। इसके फ्लैटों में शरीफ़ लोग रहते थे। लेकिन लड़कियां वहां भी होतीं थी। दलाल वहां भी घूमते थे। मैं अक्सर उकता जाता था। समंदर की लहरें भी दिल नहीं बहलाती थी। गांधी की मूर्ति आंखें बंद किये मुस्कुराती रहती थी। प्रेमी लोग लिपटते रहते थे। भिखमंगे....हिजड़े...दलाल.... ठेलेवाले... सब अपना काम करते रहते थे। मगर मुझे...मुझे क्या तकलीफ थी, मालूम नहीं, इस समय मुझे फूला बाई का ख्याल आ जाता था।

बड़ी इमारत के एक फ्लैट से कोई अक्सर यहीं नाम पुकारता था। फूला फौरन अंदर चली जाती थी। अंदर शायद काम करती थी। फिर बाहर आ जाती थी। एक बीड़ी लेकर बैठ जाती थी। लेकिन फौरन ही फिर पुकार होती थी। दम लेने की फुरसत भी नहीं मिलती थी। दुकानों से समान ले-ले कर अंदर पहुंचाती थी। होटल से चाय, दुकान से पान-सिगरेट वगैरह। उकता कर कभी-कभी मैं सोचता था कि मेरी सही जगह क्या है! इस भीड़ में मुझे किस तरफ जाना है? क्या मैं भी आगे बढ़ूं और दलालों की दुनिया में शामिल हो जाऊं? गांधी की मूर्ति के पास अरबों और अमीरों के सौदे पटाना शुरू कर दूं?

रात लेकिन हमेशा बहुत हो जाती थी। कभी आखिरी बस मिलती थी, कभी

नहीं। जूते घसीटता हुआ मैं पैदल उस ठिकाने पर पहुंच जाता था, जहां मेरी खटिया थी। पार्टनर कभी ड्यूटी पर होता था, कभी सोता रहता था। इधर जब से वह घर गया था, रात को लौटने पर खोली मुझे काटने दौड़ती थी। जितना ज्यादा हो सकता था, मैं बाहर रहता था। इस समय, जब मैं स्टेशन से बाहर आया, आखिरी बस जा चुकी थी। घड़ी में डेढ़ बज रहे थे। खाली रास्ते पर मैंने चलना शुरू कर दिया था। दारू के अड्डे खुल थे। मीट-अंडे के खोमचों के पास भीड़ थीं। रंडियों की तलाश अब भी जारी थी। ठिकाने पर पहुंचते दो-ढाई बज गये। सारी जगह सुनसान लगती थी। सिर्फ फ्लैटों की बत्तियां जल रही थीं। शायद कोई नशे में चीख रहा था। अंधेरे गलियारों से जब मैं गुज़रा तो लगा कि कोई खड़ा है। फूला बाई थी... मैं पहचान गया। पल भर रुक कर मैं आगे निकल गया।

लेकिन चाबी मेरे पास नहीं थीं शायद कहीं गिर गयी थी या कहीं रह गयी थीं। मैं समझ नहीं पाया कि क्या करूं! देर तक वहीं खड़ा रहा। फिर बाहर आ गया। फिर अंदर चला गया। इस तरह दो-तीन चक्कर हो गये। मुझे देखकर अब कुछ कुत्तों ने भूंकना शुरू कर दिया। इस समय फूला बाई अंधेरे से उजाले में आ गयी। मैंने देखा कि चेहरे पर बहुत-सा पाउडर लगाया गया था। बदरंग बालों में मुरझाया हुआ एक गजरा अटका हुआ था। एक अजीब-सी साड़ी पहनी थी, जो न जाने कब नयी रही होगी। पहली बार मुझे मालूम हुआ कि फूला भी रोज रात शायद ग्राहक तलाश करती थी। पहली बार उसने मुझसे कहा, 'क्या हो गया चक्कर क्यूं लगाते हो?'

मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूं! फिर भी मैंने कहा, 'मेरी किल्ली गुम हो गयी। खाली पे लॉक है।'

इस समय रात पूरी तरह सुनसान थी। बड़ी इमारत के 'मसाज पार्लर' से निकल कर कोई बड़ा आदमी कार का दरवाज़ा खोल रहा था? हलके उजाले में फूला चुपचाप खड़ी रही। मैं चलने लगा, तो बोली, 'जरा रुको तो... कैसा ताला है तुम्हारा?'

हिचकिचा कर मैंने उसे ताले के बारे में बताया। बोली, 'ऐसा करो...हमारी किल्ली लगा के देखो ना!'

उसकी चाल में लड़खड़ाहट थी। जब इमारत से लौटी, तो हाथ में चाबियों का गुच्छा था। मैंने कई चाबियां लगायीं। एक भी नहीं लगी। फिर उसने कोशिश की। चाबियों पर चाबियां बदलती रही। पता नहीं कैसे, ताला खुल गया। मैं पल भर वैसे ही खड़ा रह गया। अंदर जा कर बत्ती जलायी। अपने आप ही फूला अंदर आ गयी। इस

समय मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी कि उसकी तरफ देखूं, लेकिन मैं उसे देखने लगा। वह चेहरा उस उजाले में और भी काला-थका-बूढ़ा लग रहा था। बालों का बदरंग खिजाब, झुर्रियों पर पाउडर की परते और पुती हुई लाली। मुझे क्या लगा, मालूम नहीं। शायद बहुत बुरा लगा। शायद थोड़ा दुःख हुआ।

फूला बोली, 'मैं तुमकू... आते-जाते रोज देखती।' अब उसके होंठ धीरे-धीरे कांपने लगे। मुंह के कोनों में लार इकट्ठा हो गयी। रुक कर बोली, 'तुम कि नई... मेरी कू भोत अच्छे लगते।'

एकाएक ही मैं कुछ बोल नहीं सका। अजीब-सी चुप्पी पल भर छायी रही। अब फूला सम्भल गयी। बोली, 'तुमकू लगता कि मेरी उमर भोत जास्ती! नईं क्या? पर मैं सच्ची बोलती, मेरी उमर जास्ती नईं है।'

मुझे मालूम नहीं था, मैं क्या कहूं, फिर भी मैंने कहा, 'नईं, ये बात नईं। तुम मेरे को गलत समझा। मैं ऐसा आदमी नईं हूं।'

उसी तरह फूला ने कहा, 'नईं, सब आदमी लोग कमती उमर की छोकरी से मोहब्बत करते। पर मैं सच्ची बोलती, मेरा उमर जास्ती नईं। तब्बेत थोड़ा बिघड़ गया, बस!'

मैंने जैसे ज़िद करते हुए कहा, 'नईं, तुम मेरे को समझा नईं, मैं वो टाइप का आदमी नईं। मैं तुमकू बहुत अच्छा समझता, पर ... बोलते-बोलते में रुक गया। मालूम नहीं, क्या कह देता। फूला जैसे और संभल गयी। बोली, 'देखो ना, मैं तुमकू भोत पसंद करती। आते-जाते हमेशा देखती। तुम अकेले... मैं अकेली। मैं तो तुमकू... बोले तो... मोहोबत करती। और भी जास्ती मोहोबत करूंगी। क्यों' तो इस वास्ते कि मेरे कू भी मोहोबत मंगता। थोड़ा हेलप मंगता।

सुनसान रात के तीन बजे.... एक अकेले कमरे में...फूला मुझसे मुहब्बत और हेल्प की भीख मांग रही थी। उसके लिपे-पुते चेहरे पर अचानक इतनी बेबसी दिखाई दी कि मुझे बहुत तकलीफ हुई। लेकिन मैंने कहा, 'नई बाई, तुम मेरी बात समझो। मेरे को तुमसे कोई नफरत नईं है। पर मैं-मैं वो टाइप का आदमी ही नईं हूँ। नई समझी?

फूला ने कुछ नहीं कहा। अब उसका काला चेहरा और ज्यादा काला हो गया था। अब उसे कोई आशा नहीं थी। बड़ी देर तक उसी तरह चुपचाप खड़ी रही। धीरे-धीरे बोली, 'उमर जास्ती होने से क्या होता? मोहोबत नईं मंगता? हेल्प नईं मंगता?'

मैं चुप रहा। आखिर फूला ने कहा, 'चलो, जाने दो। कोई बात नईं। पर एक बात

बोलूं क्यों?'

मैं उसी तरह उसकी तरफ देखता रहा। वह बोली, 'मेरे कू थोड़ा पैसा मंगता चार-पांच रुपिया... उधारी। मैं जल्दी वापस कर देऊंगी। भरोसा करना, सच्ची बोलती।'

इस तरह फूला बाई से मेरी पहली बातचीत खत्म हुई। मैं अब भी उसी रास्ते आता और जाता था। बीड़ी फूंकती हुई फुला मुझे देखती थी। मुस्कुराती थी, लेकिन मुस्कराहट में अब पहले वाली बात नहीं थी। मेरे पास पैसों की बहुत कमी थी। फिर भी थोड़ा कुछ मैंने उसे दे दिया था। लेकिन बातचीत कभी नहीं हो पाती थी।

लेकिन एक रात... जब बिना कुछ खाये-पिये मैं सोने की कोशिश कर रहा था, दरवाजे पर दस्तक हुई। सामने फूला खड़ी थी। उसके मैले आंचल में कुछ ढका हुआ था। कुछ चिड़चिड़ा कर मैंने कहा, क्या है?'

आंचल के नीचे से एक रकाबी उसने मेरी तरफ बढ़ा दी। खोली में एक खुशबू-सी फैल गयी। प्लेट में पुलाब या इस तरह की कोई चीज थी। मैं उसकी तरफ़ देखता रह गया। उसने कहा, 'सुबू को प्लेट ले जाऊंगी। ऐसा खाली पेट नई सोने का?'

मुझे ताज्जुब हुआ था। उसको किसने बताया कि शाम मुझे खाना नहीं मिला था। इसके बाद कई बार ऐसा होने लगा। गुजरते समय कई बार वह मेरे चेहरे को देखती। उसे बहुत कुछ मालूम हो जाता था। कई बार उसने मुझे रोका। अंदर जाकर चुपचाप कोई रकाबी या प्लेट ले आयी। लेकिन बातचीत अब भी नहीं होती थी।

लेकिन अब वह मुझे बाहर भी मिलने लगी थी। समंदर के किनारे गांधी की मुस्कराती मूर्ति के पास कभी-कभी बीड़ी फूंकती हुई बैठी रहती थी। धीरे-धीरे मैंने उसके पास बैठना शुरू कर दिया था। अब वह ज्यादा थकी, ज्यादा हारी हुई मालूम होती थी। काम अब उससे होता नहीं था। 'मसाज पार्लर' में काम बहुत करवाते थे। रात को काम होता था। दिन में भी काम होता था। 'पार्लर' में कई लड़कियां थीं। रात को ये अरबों और हिंदुस्तानी रईसों की 'मालिश' करती थीं। बंद कमरों के अंदर से लगातार फूला की पुकार होती रहती थी। कभी यह पहुंचाओ...कभी वह पहुंचाओ! शराब...बर्फ...सोडा... सिगरेट...! बीच-बीच में लंबी चुप्पियां छा जाती थीं। खाना भी पकाना पड़ता था। बड़ी रात लड़कियां बहुत थक जाती थीं। फौरन खाना मांगती थी। फूला को बहुत गालियां देती थीं। नशे में कभी-कभी मारना शुरू कर देती थीं। कहां का गुस्सा कहां निकालती थीं। कोई-कोई कस्टमर खाना भी खाते थे। ये लोग खूब पैसा लुटाते थे। इतना पैसा है उनके पास कि सोच भी नहीं सकते। मगर लड़कियों को

बहुत कम मिलता था। 'पार्लर' के फ्लैट का भाड़ा ही पंद्रह हज़ार रुपिया महीना था। बचा हुआ बहुत-सा रुपिया 'पार्लर' वाला ले जाता था। कुछ दलाल लोग ले जाते थे। लड़कियों के लिए थोड़ा-सा बच जाता था। बस अच्छी तरह पहन-ओढ़ लेती थीं। लड़कियां बड़े बेमन से काम करती थीं। कई बार बुरी तरह पीटी जाती थीं। कुछ को चरस...और पता नहीं क्या-क्या की लत लग गयी थी।

दिन भर भटक कर शाम को मैं अकसर मूर्ति के चबूतरे पर बैठ जाता था। इस समय मुझे फूला का इंतजार होता था। अपने दिल का सारा गुबार अब मैं उसके सामने निकालने लगा था। लेकिन अकसर वह नहीं आ पाती थी। कई बार मूर्ति के पास रोशनी की जाती थी और भाषण होते थे। लेकिन टैक्सीवाले अरब अमीरों को यहां ले आते थे। इनके साथ हिंदुस्तानी या नेपाली लड़कियां होती थीं। छोटी-छोटी लड़कियों को अच्छे-अच्छे कपड़े पहना कर अरब लोग इन्हें सैर कराने लाते थे। इन सूखी-मुरझायी लड़कियों पर फॉरेन की जींस और कमीजें बड़ी अजीब लगती थीं। इन कपड़ों को पहली बार पहन कर ये लड़कियां बहुत खुश दिखाई देती थीं। हिंदुस्तानी दलाल और टैक्सी ड्राइवर हाथ बांधे पीछे-पीछे चलते थे। बीच-बीच में छोटी लड़कियों को डाँट-डाँट कर बताते रहते थे कि कैसी हरकत करनी चाहिए और कैसी नहीं। रेत के किनारे के रेस्तरां और होटल बहुत ऊंचे और महंगे थे। अरब लोग इन लड़कियों को वहां जरूर ले जाते थे। उस समय ऐसे खाने को पहली बार देखकर इन लड़कियों के आंखों में पता नहीं कैसी चमक आ जाती थी। फिर इस तरह खातीं कि बस देखते ही बनता था। अरब लोग इन लड़कियों को बहुत खुश करते थे। कभी घोड़ों पर बिठाते, कभी ऊंट पर। तरह-तरह से इनकी रंगीन तसवीरें उतरवाते थे। इतनी खुशियां एक साथ पाकर ये छोटी-छोटी लड़कियां उछल-उछल कर कभी यह मांगती थीं, कभी वह।

यह सब देख-देखकर फूला को बहुत गुस्सा आता था। एक दिन झल्ला कर बोली, 'सुनते क्या! एक दिन इनका भी वोई हाल होगा, जो मेरा हो रया है। मेरे कू भी ये सब में भोत मजा आता था।'

अचानक फूला जैसे रुआंसी हो गयी। हो सकता है, यह सही हो। शायद कभी फूला का भी एक जमाना रहा हो। यह बात सच हो कि दूर-दूर से लोग फूला का पता लगा कर आते थे। दलाल लोग बड़े-बड़े ग्राहकों को हमेशा फूला के बारे में बताते थे। लेकिन फूला की इस हालत को देखकर, पता नहीं क्यों, उसकी इन बातों पर भरोसा नहीं होता था।

इधर वह कुछ ज्यादा ही चिड़चिड़ाने लगी थी। हर चीज़... हर बात पर झल्ला उठती थी। अब सिर्फ लड़कियों, दलालों, पार्लरवाले को ही नहीं कोसती, सारी-सारी दुनिया को गलियां देती थी।

एक शाम, जब सूरज को डूबे काफी समय बीत गया था, गांधी की मुसकराती मूर्ति के पास हम दोनों बैठे थे। जोड़े प्यार कर रहे थे। लड़कियां ग्राहक तलाश कर रही थीं। हिजड़े नाच रहे थे और भिखारी भीख मांग रहे थे। फूला कुछ ज्यादा ही चुप थी। मैं भी चुपचाप तमाम लोगों को देख रहा थाा, जो बहुत खुश दिखाई दे रहे थे।

अचानक मैंने महसूस किया कि फूला मेरे पास सरक आयी है। लेकिन मैं अनजान बना रहा। वह कुछ और पास आ गयी। उसके शरीर का इतना पास होना मुझे कुछ ज्यादा तकलीफ देने लगा। फिर भी मैं बैठा रहा। अब उसने हाथ मेरे कंधे पर रख दिया और बोली, 'ऐसा क्या करते। चलो ना, अपुन चलेगा...किधर भी! अपुन मोहोबत करेगा।'

मैं अब भी उसी तरह बैठा रहा। उसका मुंह अब मेरे बहुत करीब आ गया था। उसने कहा, 'सच्ची, मैं तुमकू भोत मोहोबत करती...भोत। ऐसा क्या करते। चलो ना भी!'

अब मैं उठ कर खड़ा हो गया। मैंने कहा, 'एक बार बोला ना तुमको, मैं वो टाइप का आदमी नईं हूं। समझ में नईं आता क्या?'

मेरी आवाज में शायद कुछ गुस्सा था। पल भर वह उसी तरह बैठी रही, फिर खड़ी हो गयी। इस समय मैंने महसूस किया कि वह बहुत ज्यादा गुस्से में है। उसका काला चेहरा उस धुंधले अंधेरे में कांपने लगा। बहुत ही नंगी गालियां दे कर वह बोली, 'जा रे साला...जा-जा! तू क्या मोहोबत करेगा! हिजड़ा! तेरा बाबा भी मोहोबत नईं कर सकता। साला...कलेजा मंगता...कलेजा...मोहोबत के वास्ते। साला, तेरा बाप भी कभी किया। तू..तू..तू तो!'

इसके बाद नंगी गालियों की कोई हद नहीं रही। मैं चुपचाप उसे देखता रहा। मेरे मन में अब कोई गुस्सा नहीं था। उन गालियों का मुझे बुरा भी नहीं लग रहा था। उसे देख कर मुझे कुछ तकलीफ हो रही थी। वह बोलती रही, मैं सुनता रहा। वह थक गयी। लड़खड़ाती हुई चली गयी। मैं उसी तरह धुंधले अंधेरे में खड़ा रह गया। सागर की लहरों के थपेड़े पास आते गये और लोगों का शोर कम होता गया। लेकिन अब भी मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूं।

लेकिन इसके बाद फूला ने मेरी तरफ देखना बिल्कुल बंद कर दिया। कई बार मैं पास से गुजर जाता था, फिर भी वह मेरी तरफ नहीं देखती थी। क्या वह मुझसे हमेशा नाराज रहती थी? मुझे ऐसा नहीं लगता था। लगता था कि कोई सवाल है। शायद जिंदगी का सवाल! इस सवाल से अब वह अकेले ही लड़ेगी। अब उसे किसी की जरूरत नहीं हैं। मैं भी उसके लिए बेकार हूं। या शायद बहुत थक गयी है। अब किसी को देखना, किसी से बोलना उसे अच्छा नहीं लगता।

लेकिन मैं फूला से बोलना चाहता था। एक दिन मैं बहुत ज्यादा दुःखी हो गया था। इधर दफ्तरों और कंपनियों में लोगों को सिर्फ छह महीनों के लिए काम पर रखा जाता है। इससे काम करनेवाले हमेशा टेम्परेरी रहते हैं। उनके परमानेंट होने का कोई खतरा नहीं होता। हर छह महीने के बाद उन्हें काम से अलग कर दिया जाता है। इसके बाद नया अपाइंटमेंट दिया जाता है। इस बार कंपनी ने मुझे नया अपाइंटमेंट देने से इनकार कर दिया। अचानक ही मैं बेकार हो गया। इतना परेशान मैं पहले कभी नहीं हुआ था। लगा कि खूब रोऊं। उस दिन बहुत मन हो रहा था कि फूला से सब कुछ कह दूँ लेकिन मूर्ति के चबूतरे पर आना उसने बंद कर दिया था। लौटते समय रास्ते में मिली जरूर, लेकिन देख कर भी मुझे अनदेखा कर दिया। मैं वहां से बार-बार गुजरा, मगर उसने मेरी तरफ देखा तक नहीं। उस समय मुझे उस पर गुस्सा भी आया था।

मेरा रूम पार्टनर हमेशा सोता रहता था। उसकी ड्यूटी हमेशा रात को रहती थी। मेरी-उसकी बातचीत बहुत कम हो पाती थी। अब मैं अकेला ही सागर किनारे दूर-दूर तक घूमता रहता था। इस इलाके में नयी-नयी और ऊंची-ऊंची बिल्डिंगे खूब बन रही थीं। हम लोग इन्हें बस देख सकते थे। मैंने सुना था कि बिल्डर लोग एक-एक फ्लैट के कई-कई लाख रुपये लेते हैं। बहुत-से बड़े-बड़े स्मगलर लोग बिल्डर बन जाते हैं, बहुत-से लोग लाखों रुपये दे कर ये फ्लैट खरीदते हैं। फिर लाखों रुपये खर्च कर इन फ्लैटों को सजाते हैं। ये सारी बातें सुनता था, लेकिन मुझे भरोसा नहीं होता था।

मैंने यह भी सुना था कि लोग बहुत जल्द अमीर हो जाते हैं। इस बात पर भी मुझे भरोसा नहीं होता था।

इन दिनों मेरे मन में फूला से बात करने की बड़ी इच्छा होती थी। दिन भर धक्के खा कर शाम जब मैं लौटता था, तो हर रोज मेरे पास एक नयी कहानी होती थी। ये कहानियां अकसर निराशा, बेइज्जती और दुःख की कहानियां होती थीं। काम मिलना बड़ा मुश्किल हो रहा था। हर जगह अपने-अपने लोगों को काम दिया जा रहा था। ये सब कहानियां मैं पहले की तरह ही फूला को सुनाना चाहता था। लेकिन अब फूला ने

दिखाई देना भी बंद कर दिया था।

एक दिन जब मैं लौटा, तो बहुत खुश था। अगले दो-चार दिनों में मेरा काम पर लगना पक्का हो गया था। उम्मीद थी कि इस बार छह महीने वाली नौकरी नहीं होगी, पक्का हो जाने की पूरी आशा थी। मैं इतना खुश था कि किसी भी हालत में फूला से बात करना चाहता था। काफी रात तक मैं मूर्तिवाले चबूतरे पर बैठा रहा। मेरे सामने हंसते-खेलते लोग गुजर गये। मेरे सामने सूरज पानी में डूब गया। लेकिन फूला नहीं आयी। यह कोई नयी बात नहीं थी। रात तक बैठ कर मैं वहां से उठा गया। इमारत के सामने से गुजरते-गुजरते कई बार मैंने उधर देखा। फूला कहीं दिखाई नहीं दी। यह भी कोई नयी बात नहीं थी। लेकिन इस बार मुझे कुछ अजीब-सा लगा। मुझे फिर ख्याल आया कि पिछले कई दिनों से मैंने उसे नहीं देखा है। क्या हुआ? क्या वह कहीं और चली गयी? इस ख्याल से मैं कुछ परेशान हो गया। मैं किसी से फूला के बारे में पूछना चाहता था, लेकिन यहां कोई किसी से बात ही नहीं करता था।

दो-तीन दिन और गुजर गये। 'मसाज पार्लर' की बत्तियां बड़ी रात तक चमकती रहती थीं। बार-बार आते हुए.. जाते हुए... मैंने ध्यान से देखा, फूला कहीं नहीं थी। मुझे मालूम हो गया, फूला कहीं चली गयी। शायद मुझे काफी बुरा लगा। लेकिन मैं ऊंची इमारतों में रहनेवाले लोगों की बातें सोचने लगा। लाखों रुपये खर्च करनेवाले लोगों की बातें सोचने लगा। स्मगलरों, बिल्डरों, अरब अमीरों के साथ घूमती छोटी लड़कियों.. सभी की बातें सोचने लगा। लेकिन फूला के बारे में भी सोचता रहा।

लेकिन एक रात एक और ही बात हो गयी। मुझे लौटने में काफी देर हो गयी थी। अगले दिन मुझे काम पर बुलाया गया था। मैं थका था। लेकिन काफी खुश था। आखिरी बस छूट जाने के कारण मैं पैदल चल कर ही ठिकाने पर पहुंचा था। जब मैं अंधेरी गली में दाखिल हो रहा था, मैंने देखा कि लांड्री की दुकान के तख्ते पर कोई औरत पड़ी है। मैं आगे निकल गया। लेकिन फिर लौट आया। हाँ, यह फूला ही थी। मैं कुछ समझ नहीं पाया। इस समय रात के दो बज रहे थे। सड़क करीब-करीब खाली ही थी। लड़कियां और दलाल जा चुके थे। मुझे लगा कि फूला सो गयी है। लेकिन मैं फिर गुजरा और मुझे लगा कि नहीं, सोयी नहीं है। शायद छोकरियों के साथ इसने भी बहुत शराब पी ली है। मैं अपनी खोली तक गया। ताला खोलने से पहले फिर लौट आया। अब मुझे लगा कि फूला बेहोश है। कुछ हिचकिचा कर मैंने आवाज दी, 'फूला! फूला बाई! कोई जवाब नहीं आया। अब मैं उसके एकदम पास पहुंच गया। मैंने उसे हिलाया और ...और मुझे लगा कि फूला बहुत बीमार है। उसका बदन

बहुत ज्यादा गरम है और मुंह के चारों तरफ कै फैली हुई है। अचानक ही सब कुछ समझ में आ गया। शायद फूला कई दिनों से बीमार थी। मुझसे झगड़ते समय भी शायद बीमार थी। पार्लरवालों ने शायद आज उसे निकाल दिया। वहां से निकल कर वह किसी तरह तख्ते तक पहुंची.. या शायद लोग उसे यहां डाल गये। इसके बाद...! इसके बाद मेरी समझ में नहीं आया कि क्या करूं! क्या मैं फूला को उसी तरह वहां छोड़ दूं और चला जाऊं? मुझे लगा कि ऐसा नहीं हो सकता। वहां अंधेरी गली में कोई नहीं था, जिससे मैं कुछ कह सकता। सिर्फ ऊंची इमारतों की बत्तियां चमक रही थीं। और सड़क पर एक-दो टैक्सीवाले अपनी-अपनी टैक्सियों में सो गये थे। मैं चाहता था कि किसी को पुकारूं, आवाज दूं, लेकिन वहां कोई नहीं था।

उस समय मैंने हिसाब लगाया कि मेरे पास कुछ कितने रुपये बचे हैं। इसके बाद मैंने एक टैक्सीवाले को जगाने की कोशिश की। मुश्किल-ही-मुश्किल थी। फिर भी मैंने सोच लिया था कि अब क्या करना है।

इसी तरह रात बीतती गयी थी। दो अस्पतालों ने उसे लेने से इंकार कर दिया। म्युनिसिपल अस्पताल ठसाठस भरा था। मैंने बड़ी मिन्नतें की थी। नर्सों के ड्यूटी रूम में एक बिस्तर डाल कर उसे लिटा दिया गया था। सलाइन की बोतल लगा दी गयी थी। बड़ी नर्स ने मुझसे कहा कि मैं बोतल की जगह दूसरी ला दूं। अस्पताल में दवाइयां भी नहीं हैं। मैं बारह से खरीद कर दवाइयां ले आऊं। लेकिन मैं चुपचाप सुबह का इंतजार कर रहा था। वार्डों में, गलियारों मे, पलंगों पर, जमीन पर, हर जगह मरीज-ही-मरीज पड़े थे। नर्सों ने कहा था कि इंजेक्शन भी लाना होगा। बहुत-सी चीजों की जरूरत थी। लेकिन हमारे पास कुछ नहीं था। फिर भी मैं सुबह का इंतजार कर रहा था। और बेंच पर बैठे-बैठे ही सुबह हो गयी थी। मुझे नहीं मालूम था कि यह कैसी सुबह थी। लोगों ने चलना-फिरना और गाड़ियों ने दौड़ना शुरू कर दिया था। मैंने तमाम लोगों के बारे में सोचा था। ये लोग थोड़ी-बहुत मदद कर सकते थे। ड्यूटी रूम में जा कर मैंने एक बार फिर फूला की तरफ देखा था। वह अब भी बेहोश थी। चितकबरे बाल बिखरे हुए थे और वह पहले से ज्यादा कुरूप लग रही थी। इसके बाद मैंने चलना शुरू कर दिया था।

दिन भर चलता रहा। इस जगह से उस जगह और उस जगह से उस जगह। इंडिया इंटरनेशनल कॉरपोरेशन ने मुझे काम पर लेने से इनकार कर दिया। मुझे बहुत दुःख हुआ। मेरी सारी आशांए मिट्टी में मिल गयीं। इस बार मुझे बहुत भरोसा था, काम जरूर लग जायेगा। सुबह-शाम की चिंता मिट जायेगी। मुझे लगा कि मैं जैसे

फूटपाथ पर आ गया हूं। शाम होते-होते मैं लौट आया। इस समय दवाइयां और सलाइन की बोतलें मैंने खरीद ली थीं। कुछ लोगों ने थोड़े-थोड़े पैसे दे दिये थे। मैं बिल्कुल थक गया था।

जब मैं अस्पताल पहुंचा, तो फूला की हालत बहुत खराब थी। उसके मुंह पर, कानों तक कै फैली हुई थी और बिस्तर भी कै में सना हुआ था। उसकी सांस घरघरा रही थी। लगता था कि किसी भी समय उखड़ जायेगी। लेकिन फिर भी उसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं था। इस समय मुझे लगा कि फूला मर जायेगी। पता नहीं क्यों, मुझे यह भी लगा कि हे भगवान, फूला को इस तरह मरना नहीं चाहिए। किसी भी तरह उसे बचना चाहिए।

मैं दौड़ कर बड़ी सिस्टर के पास गया था। बड़ी मुश्किल से उसने मेरी तरफ ध्यान दिया था। फिर एक डॉक्टर आया था। उसने बातया था कि कै फेफड़ों में चली गयी है। फूला पड़ी हुई कै करती थी और किसी ने उसकी तरफ ध्यान नहीं दिया था। अब एक मशीन लायी गयी। मशीन घर्र-घर्र चलने लगी। मुंह के अंदर नली डाल कर डॉक्टर चारों तरफ हिलाने लगा। अब फूला एक-एक सांस खींचने के लिए बिलबिलाने लगी। बिलबिला कर सांस खींचती थी। छटपटा कर आंखें खोल चारों तरफ देखती थी। अब मुझे बार-बार लगने लगा कि किसी भी तरह उसे बच जाना चाहिए। बच कर क्या होगा? बच कर कहां जायेगी? मुझे कुछ भी मालूम नहीं था। बस, यही लग रहा था कि उसे बचना चाहिए।

मशीन चलती रही और आवाज आती रही। फूला बिलबिलाती रही और आवाज आती रही। धीरे-धीरे रात हो गयी और सभी आवाजें चुप हो गयीं। अब मशीन हटा दी गयी और बोतल फिर लगा दी गयी। अब मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूं? नर्स और डाक्टर कोई बताने को तैयार नहीं था कि क्या होगा! ऑक्सीजन के सारे सिलेंडर खाली पड़े थे। या दो-तीन थे, जो मरीजों पर लगे हुए थे। मैं बैठा रहा। फिर मैं बाहर आ गया। फिर मैं सोचने लगा कि रात क्या होगा? क्या मैं वहीं कहीं सो जाऊं? लेकिन ऐसी कोई जगह नहीं थी। रात कुछ हो गया, तो क्या फूला का दुनिया में कोई है? क्या हमारा दुनिया में कोई है? तब मुझे लगा था कि हमारा कोई नहीं है... हमीं अपने सब कुछ हैं।

अब मैं वहीं लौट आया था। जहां स्मगलर, अरब, अमीर, लड़कियां, दलाल, हिजड़े.. सब अपना काम कर रहे थे। कई सितारों वाले होटलों में बत्तियां जगमगा रही थीं और महंगे रेस्तराओं में अजीब धुनें बज रही थी। 'मसाज पार्लर' के सामने खूबसूरत

गाड़ियां खड़ी थीं। आज शायद कोई खास दिन था। गांधी जी की मूर्ति को लट्टुओं से सजाया गया था और सामने कोई नेता भाषण कर रहा था। काफी भीड़ लगी हुई थी। इस समय नेता गांधी जी, पंडित जी बगैरह की महानता का बखान कर रहा था और एक दलाल एक कारवाले को पटाने की कोशिश कर रहा था।

तब मुझे अचानक पहली बार खयाल आया कि मैं किस दुनिया में हूं? किसने इसे ऐसा बना दिया है? मैं क्या करूं? इसे ऐसा ही छोड़ कर अपनी आंखें बन्द कर लूं? चारों तरफ दलालों की भीड़ है। मैं भी दलालों की दुनिया में-दलालों के दलालों की दुनिया में शामिल नहीं कर सकता। मैं बेकार, बेघर, बेसहारा सही, पर मैं दलालों की दुनिया में शामिल नहीं हो सकता। नौकरी नहीं मिलेगी...कभी नहीं। कोई बात नहीं। फूला मर जायेगी, कोई बात नहीं। रास्ता मुझे मालूम नहीं, कोई बात नहीं। इन सबके लिए मेरे अंदर नफरत है। वह हमशा जिंदा रहेगी। वही मुझे रास्ता दिखायेगी।

रात भर आवाजें आती रहीं। रात भर बाजे बजते रहे और धूंने गूंजती रहीं। रात भर बत्तियां जलती रहीं। रात भर..मैं सो नहीं सका या शायद सो गया और सपने देखता रहा। फूला मर गयी और बाजे बजते रहे... धुने गूंजती रही...बत्तियां झिलमिलाती रहीं। बार-बार मैं जाग कर उठ बैठा। बार-बार मैं सो गया। बार-बार फूला मरती गयी।

लेकिन जब सुबह हो गयी, तो फूला मरी नहीं, जिंदा थी। मैं सबसे पहले अस्पताल पहुंचा था। बोतल और नली को हटा दिया गया था। नर्स ने कहा कि मैं चाय-कॉफी दूध भी ला कर उसे पिलाऊँ।

एक गिलास में चाय ले कर जब मैं उसके पास बैठा, तो आंखे खोल कर उसने मेरी तरफ देखा। मैंने चम्मच से चाय दी। उसने चुपचाप पी ली। एक बार फिर उसने मेरी तरफ देखा। फिर चुपचाप आंखें बंद कर लीं।

लेकिन इसी समय बड़ी नर्स ने आ कर कहा मैं उसे ले जाऊं और फौरन वह जगह खाली कर दूं। इमर्जेंसी में उसे रख लिया गया था। अब जान के लिए खतरा नहीं है। अब ड्यूटी रूम में उसे रखा नहीं जा सकता। अस्पताल में कोई जगह नहीं है। बाकी दवाइयां मैं उसे घर ले जा कर दूं। तब मैंने सोचा था...घर? घर ले जाऊँ? कहां है घर? 'मसाज पार्लर' वाले उसे रखेंगे? काफी समय मैंने उसी तरह गुजार दिया था।

अचानक बड़ी नर्स बहुत तेजी से मेरे पास आयी। फूला को न ले जाने के लिए उसने मुझे बहुत डांटा। आवाज दे कर उसने कई वार्ड बॉय बुला लिये। आखिरी बार उसने मुझसे कहा कि अगर मैं फूला को नहीं ले जाऊंगा, तो वह उसे बाहर डलवा

देगी। इस बार मैं चुप नहीं रह सका। फूला के पास पहुंच कर मैंने कहा, 'फूला बाई...उठो! अब यहां से चलना है।'

फूला उठने की कोशिश करने लगी, लेकिन उठा नहीं गया। तब आगे बढ़ कर मैंने सहारा दिया। किसी तरह उठ कर बैठ गयी। फिर सहारे-सहारे खड़ी हो गयी। फिर घिसट-घिसट कर हम दोनों ने किसी तरह चलना शुरू कर दिया। घिसटते हुए हम अस्पताल के फाटक पर आ गये। अचानक वह ठहर गयी। मैंने देखा कि कुछ कह रही है। मैंने सुनने की कोशिश की। कांपती आवाज में उसने कहा, 'तुम..तुम..नईं आता तो...तो मर जाती!'

इस समय उसकी आंखें डबडबायी हुई थीं। अचानक मैं जोरों से हंस पड़ा... हंसता रहा। वह देखती रही। हंसते हुए मैंने कहा, 'तुम...बोली थीं ना ...कि मैं ...मुहब्बत नहीं कर सकता। अभी देखा ना, मैं कैसी मुहब्बत करता!...बोलो!

लेकिन फिर इसी समय मैं अचानक बहुत गंभीर हो गया। मैंने कहा, 'मगर...मैं...वो टाइप का आदमी नईं हू...समझ गयीं ना!

इस समय घिसटते हुए..., लड़खड़ाते हुए... हम अस्पताल से बाहर निकल रहे थे। लेकिन...हमें नहीं मालूम था...कि किधर जाना है!

जगदंबा प्रसाद दीक्षित

जन्म : 1935, बालाघाट (म.प्र.)

प्रमुख कृतियाँ : मुरदाघर, इतिवृत, कटा हुआ आसमान (उपन्यास) शुरुआत तथा अन्य कहानियाँ (कहानी संग्रह)

बोलनेवाली औरत

–ममता कालिया

''यह झाड़ू सीधी किसने खड़ी की?'' बीजी ने त्योरी चढ़ाकर विकट मुद्रा में पूछा। जवाब न मिलने पर उन्होंने मीरा को धमकाया, ''इस तरह फिर कभी झाड़ू की तो...''

वे कहना चाहती थीं कि मीरा को काम से निकाल देंगी पर उन्हें पता था नौकरानी कितनी मुश्किल से मिलती है। फिर मीरा तो वैसे भी हमेशा छोड़ू -छोड़ूँ मुद्रा में रहती थी।

''मैंने नहीं रखी'', मीरा ने ऐंठकर जवाब दिया।

''क्यों रखी थी!'' तुझे इतना नहीं मालूम कि झाड़ू खड़ी रखने से घर में दलिद्दर आता है, कर्ज बढ़ता है, रोग जड़ पकड़ लेता है।''

''यह तो मैंने कभी नहीं सुना।''

''जाने कौन गाँव की है तू। माँ के घर से कुछ भी तो सीखकर नहीं आई। काके का काम वैसे ही ढीला चल रहा है, तू और झाड़ू खड़ी रख, यही सीख है तेरी!''

''मेरा ख्याल है झाड़ू गुसलखाने के बीचोबीच भीगती हुई, पसरी हुई छोड़ देने से दलिद्दर आ सकता है। तीलियाँ गल जाती हैं, रस्सी ढीली पड़ जाती है और गन्दी भी कितनी लगती है।''

''आज तो मैंने माफ कर दिया, फिर भी कभी झाड़ू खड़ी न मिले, समझी!''

''इस बात में कोई तुक नहीं है बीजी, झाड़ू कैसे भी रखी जा सकती है।''

बीजी झुँझला गई। कैसी जाहिल और जिद्दी लड़की ले आया है काका। लाख बार

कहा था इस कुदेसिन से ब्याह न कर, पर नहीं, उसके सिर पर तो भूत सवार था।

शिखा को हँसी आ गई। बीजी अपने को बहुत सही और समझदार मानती हैं, जबकि अकसर उनकी बातों में कोई तर्क नहीं होता।

उसे हँसते देखकर बीजी का खून खौला गया।

''इसे तो बिल्कुल अकल नहीं'', उन्होंने मीरा से कहा।

''बीजी चाय पिएँगी?'' शिखा ने पूछा।

बीजी उसकी तरफ पीठ करके बैठी रहीं। शिखा की बात का जवाब देना वे जरूरी नहीं समझतीं। वैसे भी उनका ख्याल था कि शिखा के स्वर में खुशामद की कमी रहती है।

शिखा ने चाय का गिलास उनके आगे रखा तो वे भड़क गईं, ''वैसे ही मेरा कब्ज के मारे बुरा हाल है, तू चाय पिला-पिलाकर मुझे मार डालना चाहती है।''

शिखा ने और बहस करना स्थगित किया और चाय का गिलास लेकर कमरे में चली गई।

शिखा का शौहर, कपिल अपने घरवालों से इन अर्थों से भिन्न था कि आमतौर पर उसका सोचने का एक मौलिक तरीका था। शादी के ख्याल से जब उसने अपने आस-पास देखा, तो कॉलेज में उसे अपने से दो साल जूनियर बी.एससी. में पढ़ती शिखा अच्छी लगी थी। सबसे पहली बात यह थी कि वह उन सब औरतों से एकदम अलग थी जो उसने परिवार और अपने परिवेश में देखी थीं। शिखा का पूरा नाम दीपशिखा था लेकिन कोई नाम पूछता तो वह महज नाम नहीं बताती, ''मेरे माता-पिता ने मेरा नाम गलत रखा है। मैं दीपशिखा नहीं, अग्निशिखा हूँ।'' वह कहती।

अग्निशिखा की तरह ही वह हमेशा प्रज्वलित रहती, कभी किसी बात पर, कभी किसी सवाल पर। तब उसकी तेजी देखने लायक होती। उसकी वक्तृता से प्रभावित होकर कपिल ने सोचा वह शिखा को पाकर रहेगा। पढ़ाई के साथ-साथ वह पिता के व्यवसाय में भी लगा था, इसलिए शादी से पहले नौकरी ढूँढ़ने की उसे कोई जरूरत नहीं थी। बिना किसी आडंबर, दहेज या नखरे के एक सादे समारोह में वे विवाह-सूत्र में बँध गए। शिखा उसकी आत्मनिर्भरता, खूबसूरती और स्वतंत्र सोच से प्रभावित हुई। तब उसे यह नहीं पता था कि प्रेम और विवाह दो अलग-अलग संसार हैं। एक में भावना और दसूरे में व्यवहार की जरूरत होती है। दुनिया भर में विवाहित

औरतों का केवल एक स्वरूप होता है। उन्हें सहमति-प्रधान जीवन जीना होता है। अपने घर की कारा में वे कैद रहती हैं। हर एक की दिनचर्या में अपनी-अपनी तरह का समरसता रहती है। हरेक के चेहरे पर अपनी-अपनी तरह की ऊब। हर घर का एक ढर्रा है जिसमें आपको फिट होना है। कुछ औरतें इस ऊब पर श्रृंगार का मुलम्मा चढ़ा लेती हैं पर उनके श्रृंगार में भी एकरसता होती है। शिखा अन्दाज लगाती, सामने वाले घर की नीता ने आज कौन-सी साड़ी पहनी होगी और प्राय: उसका अन्दाज ठीक निकलता। यही हाल लिपिस्टक के रंग और बालों के स्टाइल का था। दु:ख की बात यही थी कि अधिकांश औरतों को इस ऊब और कैद की कोई चेतना नहीं थी। वे रोज सुबह साढ़े नौ बजे सासों, नौकरों, नौकरानियों, बच्चों, माली और कुत्तों के साथ घरों में छोड़ दी जातीं, अपना दिन तमाम करने के लिए। वही लंच पर पति का इन्तजार, टी.वी. पर बेमतलब कार्यक्रमों का देखना और घर-भर के नाश्ते, खाने- नखरों की नोक पलक सँवारना। चिकनी महिला पत्रिकाओं के पन्ने पलटना, दोपहर को सोना, सजे हुए घर को कुछ और सजाना, सास की जी-हुजूरी करना और अन्त में रात को एक जड़ नींद में लुढ़क जाना।

कपिल के घर आते ही बीजी ने उसके सामने शिकायत दर्ज की, ''तेरी बीवी तो अपने को बड़ी चतुर समझती है। अपने आगे किसी की चलने नहीं देती। खड़ी-खड़ी जबाब टिकाती है।''

कपिल को गुस्सा आया। शिखा को एक अच्छी पत्नी की तरह चुप रहना चाहिए, खासतौर पर माँ के आगे। इसने घर को कॉलेज का डिबेटिंग मंच समझ रखा है और माँ को प्रतिपक्ष का वक्ता। उसने कहा, ''मैं उसे समझा दूँगा, आगे से बहस नहीं करेगी।''

''उलटी खोपड़ी की है बिल्कुल। वह समझ ही नहीं सकती'' माँ ने मुँह बिचकाया।

रात, उसने कमरे में शिखा से कहा, ''तुम माँ से क्यों उलझती रहती हो दिन-भर!''

''इस बात का विलोम भी उतना ही सच है।''

''हम विलोम-अनुलोम में बात नहीं कर रहे हैं, एक सम्बन्ध है जिसकी इज्जत तुम्हें करनी होगी।''

''गलत बातों की भी!''

''माँ की कोई बात गलत नहीं होती।''

''कोई भी इंसान परफेक्ट नहीं हो सकता।''

कपिल तैश में आ गया, ''तुमने माँ को इम्परफेक्ट कहा। तुम्हें शर्म आनी चाहिए। तुम हमेशा ज्यादा बोल जाती हो और गलत भी।''

''तुम मेरी आवाज बन्द करना चाहते हो।''

''मैं एक शान्त और सुरुचिपूर्ण जीवन जीना चाहता हूँ।''

शिखा अन्दर तक जल गई इस उत्तर से क्योंकि यह उत्तर हजार नए प्रश्नों को जन्म दे रहा था। उसने प्रश्नों को होठों के क्लिप से दबाया और सोचा, अब वह बिल्कुल नहीं बोलेगी, यहाँ तक कि ये सब उसकी आवाज को तरस जायेंगे।

लेकिन यह निश्चय उससे निभ न पाता। बहुत जल्द कोई-न-कोई ऐसा प्रसंग उपस्थित हो जाता कि ज्वालामुखी की तरह फट पड़ती और एक बार फिर बदतमीज और बदजुबान कहलाई जाती। तब शिखा बेहद तनाव में आ जाती। उसे लगता घर में जैसे टॉयलेट होता है ऐसे एक टॉकलेट भी होना चाहिये जहाँ खड़े होकर वह अपना गुबार निकला ले, जंजीर खींचकर बातें बहा दे और एक सभ्य शान्त मुद्रा से बाहर आ जाये। उसे यह भी बड़ा अजीब लगता है कि वह लगातार ऐसे लोगों से मुखातिब है जिन्हें इसके इस भारी-भरकम शब्दकोश की जरूरत ही नहीं है। घर को सुचारू रूप से चलाने के लिए सिर्फ दो शब्दों की दरकार थी-जी और हाँजी।

''कल छोले बनेंगे?''

''जी छोले बनेंगे।''

''पाजामों के नाड़ें बदले जाने चाहिए। ''

''हाँ जी, पाजामों के नाड़े बदले जाने चाहिए।''

उसने अपने जैसी कई स्त्रियों से बात करके देखा, सबमें अपने घरबार के लिए बेहद सन्तोष और गर्व था।

''हमारे तो ये ऐसे हैं।'' ''हमारे तो ये वैसे हैं जैसा कोई नहीं हो सकता।''

''हमारे बच्चे तो बिल्कुल लव-कुश की जोड़ी है।'' ''हमारा बेटा तो पढ़ने में इतना तेज है कि पूछो ही मत।'' शिखा को लगता उसी में शायद कोई कमी है जो वह इस तरह सन्तोष में लबालब भरकर ''मेरा परिवार महान'' के राग नहीं अलाप सकती।

रातों को बिस्तर में पड़े-पड़े वह देर तक सोती नहीं, सोचती रहती, उसकी

नियति क्या है। न जाने कब कैसे एक फुलटाइम गृहिणी बनती गई जबकि उसने ज़िन्दगी की एक बिल्कुल अगल तस्वीर देखी थी। कितना अजीब होता है कि दो लोग बिल्कुल अनोखे, अकेले अन्दाज में इसलिए जनदीक आयें कि वे एक-दूसरे की मौलिकता की कद्र करते हों, महज इसलिए टकराएँ क्योंकि अब उन्हें मौलिकता बरदाश्त नहीं।

दरअसल वे दोनों अपने-अपने खलनायक के हाथों मार खा रहे थे। यह खलनायक था रूटीन जो जीवन की खूबसूरती को दीमक की तरह चाट रहा था। कपिल चाहता था कि शिखा एक अनुकूल पत्नी की तरह रूटीन का बड़ा हिस्सा अपने ऊपर ओढ़ ले और उसे अपने मौलिक सोच-विचार के लिए स्वतन्त्र छोड़ दे। शिखा की भी यही उम्मीद थी। उनकी जिन्दगी का रूटीन या ढर्रा उनसे कहीं ज्यादा शक्तिशाली था। अलस्सुबह वह कॉलबेल की पहली कर्कश ध्वनि के साथ जग जाता और रात बारह के टन-टन घंटे के साथ सोता। बीजी घर में इस रूटीन की चौकीदार तैनात थीं। घर की दिनचर्या में जरा-सी भी देर-सबेर उन्हें बर्दाश्त नहीं थी। शिखा जैसे-तैसे रोज के काम निपटाती और जब समस्त घर सो जाता, हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल एक बार फिर अपना दिन शुरू करने की कोशिश करती। उसे सोने में काफी देर हो जाती और अगली सुबह उठने में भी। उसके सभी आगमी काम थोड़े पिछड़ जाते। बीजी का हिदायतनामा शुरू हो जाता, ''यह आधी-आधी रात तक बत्ती जलाकर क्या करती रहती है तू। ऐसे कहीं घर चलता है!'' ससुर 194 में सीखा हुआ मुहाबरा टिका देते, ''अर्ली टु बेड एंड अर्ली टु राइज बगैरह-बगैरह।'' हिदायतें सही होतीं पर शिखा को बुरी लगतीं। वह बेमन से झाड़ू-झाड़न पोचे का रोजनामचा हाथ में उठा लेती जबकि उसका दिमाग किताब, कागज और कलम की माँग करता रहता। कभी-कभी छुट्टी के दिन कपिल घर के कामों में उसकी मदद करता। बीजी उसे टोक देंती, ''ये औरतों वाले काम करता तू अच्छा लगता है। तू तो बिल्कुल जोरू का गुलाम हो गया है।''

घर में एक सहज और सघन सम्बन्ध को लगातार ठोंक-पीठकर यान्त्रिक बनाया जा रहा था। एकान्त में जो भी तन्मयता पति-पत्नी के बीच जन्म लेती, दिन के उजाले में उसकी गर्दन मरोड़ दी जाती। बीजी को सन्तोष था कि वे परिवार का संचालन बढ़िया कर रही हैं। वे बेटे से कहतीं,''तू फिकर मत कर। थोड़े दिनों में मैं इसे ऐन पटरी पर ले आऊंगी।''

पटरी पर शिखा तब भी नहीं आई अब दो बच्ची की माँ हो गई। बस इतना भर हुआ

कि उसने अपने सभी सवालों का रुख अन्य लोगों से हटाकर कपिल और बच्चों की तरफ कर लिया। बच्चे अभी कई सवालों को जवाब देने लायक समझदार नहीं हुए थे, बल्कि लाड़-प्यार में दोनों के अन्दर एक तर्कातीत तुनकमिजाजी आ बैठी थी। स्कूल से आकर वे दिन-भर वीडियो देखते, गाने-सुनते, आपस में मार-पीट करते और जैसे-तैसे अपना होमवर्क पार लगाकर सो जाते। कपिल अपने व्यवसाय से बचा हुआ समय अखबारों, पत्रिकाओं और दोस्तों में बिताता। अकेली शिखा घर की कारा में कैद घटनाहीन दिन बिताती रहती। वह जीवन के पिछले दस सालों और अगले बीस सालों पर नजर डालती और घबरा जाती। क्या उसे वापस अग्नि शिखा की बजाय दीपशिखा बनकर ही रहना होगा, मद्धिम और मधुर-मधुर जलना होगा। वह क्या करे अगर उसके अन्दर तेल की जगह लावा भरा पड़ा है।

उसे रोज लगता कि उन्हें अपना जीवन नये सिरे से शुरू करना चाहिये। इसी उद्देश्य से उसने कपिल से कहा, ''क्यों नहीं हम दो-चार दिन को कहीं घूमने चलें।''

''कहाँ?''

''कहीं भी। जैसे जयपुर या आगरा।''

''वहाँ हमें कौन जानता है। फिजूल में एक नई जगह जाकर फँसना।''

''वहाँ देखने को बहुत कुछ है। हम घूमेंगे, कुछ नई और नायाब चीज़ें खरीदेंगे, देखना, एकदम फ्रेश हो जायेंगे।''

''ऐसी सब चीजें यहाँ भी मिलती हैं, सारी दुनिया का दर्शन जब टी.वी. पर हो जाता है तो वहाँ जाने में क्या तुक है?''

''तुक के सहारे दिन कब तक बितायेंगे?''

बच्चों ने इस बात का मजाक बना लिया ''कल को तुम कहोगी, अंडमान चलो, घूमेंगे।''

''इसका मतलब अब हम कहीं नहीं जायेंगे, यहीं पड़े-पड़े एक दिन दरख्त बन जायेंगे।''

''तुम अपने दिमाग का इलाज कराओ, मुझे लगता है तुम्हारे हॉरमोन बदल रहे हैं।''

''मुझे लगता है, तुम्हारे भी हॉरमोन बदल रहे हैं।''

''तुम्हारे अन्दर बराबरी का बोलना एक रोग बनता जा रहा है। इन ऊलजलूल

बातों में क्या रखा है?''

शिखा याद करती वे प्यार के दिन जब उसकी कोई बात बेतुकी नहीं थी। एक इंसान को प्रेमी की तरह जानना और पति की तरह पाना कितना अलग था। जिसे उसने निराला समझा वहीं कितना औसत निकला। वह नहीं चाहता जीवन के ढर्रे में कोई नयापन या प्रयोग। उसे एक परंपरा चाहिए जी-हुजूरी की। उसे एक गाँधारी चाहिए जो जानबूझकर न सिर्फ अन्धी हो बल्कि गूँगी और बहरी भी।

बच्चों ने बात दादी तक पहुँचा दी। बीजी एकदम भड़क गईं, ''अपना काम-धन्धा छोड़ कर काका जयपुर जायेगा, क्यों, बीवी को सैर कराने। एक हम थे, कभी घर से बाहर पैर नहीं रखा।''

''और अब जो आप तीर्थ के बहाने घूमने जाती हैं वह?'' शिखा से नहीं रहा गया

''तीरथ को तू घूमना कहती है! इतनी खराब जुबान पाई है तूने, कैसे गुजारा होगा तेरी गृहस्थी का!''

''काश गोदरेज कम्पनी का कोई ताला होता मुँह पर लगानेवाला, तो ये लोग उसे मेरे मुँह पर जड़कर चाबी सेफ में डाल देते'', शिखा ने सोचा, ''सच ऐसे कब तक चलेगा जीवन।''

बच्चे शहजादों की तरह बर्ताव करते। नाश्ता करने के बाद जूठी प्लेटें कमरे में पड़ी रहतीं मेज पर। शिखा चिल्लाती, ''यहाँ कोई रूम सर्विस नहीं चल रही है, जाओ, अपने जूठे बर्तन रसोई में रखकर आओ।''

''नहीं रखेंगे, क्या कर लोगी'', बड़ा बेटा हिमाकत से कहता।

न चाहते हुए भी शिखा मार बैठती उसे।

एक दिन बेटे ने पलटकर उसे मार दिया। हल्के हाथ से नहीं, भरपूर घूँसा मुँह पर। होठ के अन्दर एक तरफ का मांस बिलकुल चिथड़ा हो गया। शिखा सन्न रह गई। न केवल उसके शब्द बन्द हो गए, जबड़ा भी जाम हो गया। बर्तन बेटे ने फिर भी नहीं उठाये, वे दोपहर तक कमरे में पड़े रहे। घर भर में किसी ने बेटे को गलत नहीं कहा।

बीजी एक दर्शक की तरह वारदात देखती रहीं। उन्होंने कहा, ''हमेशा गलत बात बोलती हो, इसी से दूसरे का खून खौलता है। शुरू से जैसी तूने ट्रेनिंग दी, वैसा वह बना है। ये तो बचपन से सिखानेवाली बातें हैं। फिर तू बर्तन उठा देती तो क्या घिस जाता।''

उन्हीं के शब्द शिखा के मुँह से निकल गए, ''अगर ये रख देता तो इसका क्या घिस जाता।''

''बदतमीज कहीं की, बड़ों से बात करने की अकल नहीं है।'' बीजी ने कहा।

ससुर ने सारी घटना सुनकर फिर 194 का एक मुहावरा टिका दिया, ''एज यू सो, सो शैल यू रीप''

कपिल ने कहा, ''पहले सिर्फ मुझे सताती थीं, अब बच्चों का भी शिकार कर रही हो।''

''शिकार तो मैं हूं, तुम सब शिकारी हो'', शिखा कहना चाहती थी पर जबड़ा एकदम जाम था। होंठ अब तक सूज गया था। शिखा ने पाया, परिवार में परिवार की शर्तों पर रहते-रहते न सिर्फ वह अपनी शक्ल खो बैठी है वरन् अभिव्यक्ति भी। उसे लगा वह ठूँस ले अपने मुँह में कपड़ा या सी डाले इसे लोहे के तार से। उसके शरीर से कहीं कोई आवाज न निकले। बस, उसके हाथ-पाँव परिवार के काम आते रहें। न निकलें इस वक्त मुँह से बोल लेकिन शब्द उसके अन्दर खलबलाते रहेंगे। घर के लोग उसके समस्त रन्ध्र बन्द कर दें फिर भी ये शब्द अन्दर पड़े रहेंगे, खौलते और खदकते। जब मृत्यु के बाद उसकी चीर-फाड़ होगी, तो ये शब्द निकल भागेंगे शरीर से और जीती-जागती इबारत बन जायेंगे। उसके फेफड़ों से, गले की नली से, अँतड़ियों से चिपके हुए ये शब्द बाहर आकर तीखे, नुकीले, कँटीले, जहरीले असहमति के अग्रलेख बनकर छा जायेंगे घर भर पर। अगर वह इन्हें लिख दे तो एक बहुत तेज एसिड का आविष्कार हो जाये। फिलहाल उसका मुँह सूजा हुआ है, पर मुँह बन्द रखना चुप रहने की शर्त नहीं है। ये शब्द उसकी लड़ाई लड़ते रहेंगे।

ममता कालिया

जन्म : 2 नवंबर, 194, वृन्दावन

प्रमुख कृतियाँ : छुटकारा, एक अदद औरत, सीट नं. 6, बोलने वाली औरत (कहानी संग्रह) बेघर, लड़कियाँ, नरक-दर-नरक, दौड़ (उपन्यास) कितने शहरों में कितनी बार (संस्मरण)

सिल्वर वेडिंग

–मनोहर श्याम जोशी

जब सेक्शन ऑफिसर वाई.डी. (यशोधर) पन्त ने आखिरी फाइल का लाल फीता बाँधकर निगाह मेज से उठाई तब दफ्तर की पुरानी दीवार घड़ी पाँच बजकर पच्चीस मिनट बजा रही थी। उनकी अपनी कलाई घड़ी में साढ़े पाँच बजे थे। पन्त जी ने अपनी घड़ी रोजाना सुबह-शाम रेडियों समाचारों से मिलाते हैं, इसलिए उन्होंने दफ्तर की घड़ी को ही सुस्त ठहराया। फाइल आउट ट्रे में डालकर उन्होंने 'दिन के दस' के बंधे हुए राशन में से सातवीं सिगरेट सुलगाई और एक निगाह अपने मातहतों पर डाली जो उनके ही कारण पाँच बजे के बाद भी दफ्तर में बैठने को मजबूर होते हैं। चलते-चलते जूनियरों से कोई मनोरंजक बात कहकर दिन-भर के शुष्क व्यवहार का निराकरण कर जाने की कृष्णानन्द (किशन दा) पाण्डे से मिली हुई परम्परा का पालन करते हुए उन्होंने कहा, ''आप लोगों की देखा-देखी सेक्शन की घड़ी भी सुस्त हो गई है।''

सीधे 'असिस्टेण्ट ग्रेड' में आए नये छोकरे चड्ढा ने, जिसकी चौड़ी मोहरी वाली पतलून और ऊँची एड़ी वाले जूते पन्त जी को 'समहाउ इम्प्रॉपर' मालूम होते हैं, थोड़ी बदतमीजी-सी की। 'ऐज यूजुअल' बोला, ''बड़े बाऊ, आपकी अपनी चूनेदानी का क्या हाल है? वक्त सही देती है?''

पन्त जी ने चड्ढा की धृष्टता को अनदेखा किया और कहा, ''मिनिट टु मिनिट करेक्ट चलती है।''

चड्ढा ने कुछ और धृष्ट होकर पन्त जी की कलाई थाम ली। इस तरह का धृष्टता

का प्रबल विरोध करना यशोधर बाबू ने छोड़ दिया है। मन-ही-मन वह उस जामने की याद जरूर करते हैं जब दफ्तर में किशन दा को भाई नहीं 'साहब' कहते और समझते थे। घड़ी की ओर देखकर कहा, ''बाबा आदम के जमाने की है बड़े बाऊ यह तो! आप तो डिजिटल ले लो एक। जापानी। 'स्मगल्ड' ! सस्ती मिल जाती है।''

''यह घड़ी मुझे शादी में मिली थी। हम पुरानी चाल के, हमारी घड़ी पुरानी चाल की। अरे, यही बहुत है कि अब तक 'राइट टाइम' चल रही है-क्यों, कैसी रही?''

इस तरह का नहले पर दहला जवाब देते हुए एक हाथ आगे बढ़ा देने की परम्परा थी, रेम्जी स्कूल अल्मोड़ा में, जहाँ से कभी यशोधर बाबू ने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। इस तरह के आगे बढ़े हुए हाथ पर सुनने वाला बतौर दाद अपना हाथ मारा करता था और वक्ता-श्रोता दोनों ठठाकर हाथ मिलाया करते थे। ऐसी ही परम्परा किशन दा के क्वार्टर में थी जहाँ रोजी-रोटी की तलाश में आए यशोधर पन्त नामक एक मैट्रिक पास बालक को शरण मिली थी कभी। किशन दा कुँआरे थे और पहाड़ से आए हुए कितने ही लड़के ठीक-ठिकाना होने से पहले उनके यहाँ रह जाते थे। मैस जैसी थी। मिलकर लाओ, पकाओ, खाओ। यशोधर बाबू जिस समय दिल्ली आए थे उनकी उम्र सरकारी नौकरी के लिए कम थी। कोशिश करने पर भी 'बॉय सर्विस में वह नहीं लगाए जा सके। तब किशन दा ने उन्हें मैस का रसोइया बनाकर रख लिया। यही नहीं, उन्होंने यशोधर को पचास रुपये उधार भी दिए कि वह अपने लिए कपड़े बना सके और गाँव पैसा भेज सके। बाद में इन्हीं किशन दा ने अपने ही नीचे नौकरी दिलवाई और दफ्तरी जीवन में मार्गदर्शन किया।

चड्ढा ने जोर से कहा, ''बड़े बाऊ, आप किन ख्यालों में खो गए? मेनन पूछ रहा है कि आपकी शादी हुई कब थी?''

यशोधर बाबू ने सकपकाकर अपना बढ़ा हुआ हाथ वापस खींचा और मेनन से मुखातिब होकर बोले, ''नाव लैट मी सी, आई वाज मैरिड ऑन सिक्स्थ फरवरी नाइंटीन फोर्टी सेवन।''

मेनन ने फौरन हिसाब लगाया और चहककर बोला, ''मैनी हैप्पी रिटर्न्स ऑफ द डे सर! आज तो आपका 'सिल्वर वेडिंग' है। शादी को पूरा पच्चीस साल हो गया।''

यशोधर जी खुश होते हुए झेंपे और झेंपते हुए खुश हुए। यह अदा उन्होंने किशन दा से सीखी थी। चड्ढा ने घण्टी बजाकर चपरासी को बुलाया और कहा, ''सुन भई भगवानदास, बड़े बाऊ से बड़ा नोट ले और सारे सेक्शन के लिए चाय-पानी का

इन्तजाम कर फटाफट।''

यशोधर जी बोले, ''अरे ये वेडिंग एनिवर्सरी वगैरह सब गोरे साहबों के चोंचले हैं–हमारे यहाँ जो थोड़ी मानते हैं।''

चड्ढा बोला, ''मिक्सचर मत पिलाइए गुरुदेव! चाय–मट्ठी–लड्डू बस इतना ही तो सौदा है। इनमें कौन आपकी बड़ी माया निकली जानी है।''

यशोधर बाबू ने जेब से बटुआ और बटुये से दस का नोट निकाला और कहा, ''आप लोग चाय पीजिए। 'दैट' तो 'आई डू नॉट माइण्ड' लेकिन जो हमारे लोगों में 'कस्टम' नहीं है, उस पर 'इनसिस्ट' करना, 'दैट' मैं 'समहाउ इम्प्रॉपर फाइण्ड' करता हूँ।''

चड्ढा ने दस का नोट चपरासी को दिया और पुन: बड़े बाऊ के आगे हाथ फैला दिया कि एक नोट से सेक्शन का क्या बनना है? रुपया तीस हों तो चुग्गे–भर का जुगाड़ करा सकें।

सारा सेक्शन जानता है कि यशोधर बाबू अपने बटुये में सौ–डेढ़ सौ रुपये हमेशा रखते हैं, भले ही उनका दैनिक खर्च नगण्य है। और तो और, बस–टिकट का खर्च भी नहीं। गोल मार्केट से 'सेक्रेटरिएट' तक पहले साइकिल से आते–जाते थे। इधर पैदल आने–जाने लगे हैं क्योंकि उनके बच्चे आधुनिक युवा हो चले हैं और उन्हें अपने पिता का साइकिल–सवार होना सख्त नागवार गुजरता है। बच्चों के अनुसार साइकिल तो चपरासी चलाते हैं। बच्चे चाहते हैं कि पिता जी स्कूटर ले लें। लेकिन पिता जी को 'समाहउ' स्कूटर निहायत बेहूदा सवारी मालूम होती है और कार जब 'अफोर्ड' की ही नहीं जा सकती तब उसकी बात सोचना ही क्यों?

चड्ढा के जोर देने पर बड़े बाऊ ने दस–दस के दो नोट और दे दिए लेकिन सारे सेक्शन के इसरार करने पर भी वह अपनी 'सिल्वर वेडिंग' की इस दावत के लिए रुके नहीं। मातहत लोगों के चलते–चलते थोड़ा हँसी–मजाक कर लेना किशन दा की परम्परा में है। उनके साथ बैठकर चाय–पानी और गप्प–गप्पाष्टक में वक्त बरबाद करना उस परम्परा के विरुद्ध है।

इधर यशोधर बाबू ने दफ्तर से लौटते हुए रोज बिड़ला मन्दिर जाने और उसके उद्यान में बैठकर प्रवचन सुनने अथवा स्वयं ही प्रभु का ध्यान लगाने की नयी रीत अपनाई है। यह बात उनके पत्नी–बच्चों को बहुत अखरती है। ''बब्बा, आप कोई बुड्ढे थोड़े हैं जो रोज–रोज मन्दिर जाएँ, इतने ज्यादा व्रत करें।'' ऐसा कहते हैं वे। यशोधर

बाबू इस आलोचना को अनसुना कर देते हैं। सिद्धान्त के धनी की , किशन दा के अनुसार, वही निशानी है।

बिड़ला मन्दिर से उठकर यशोधर बाबू पहाड़गंज जाते हैं और घर के लिए साग–सब्जी खरीद लाते हैं। अगर किसी से मिलना–मिलाना हो तो वह भी इसी समय कर लेते हैं। तो भले ही दफ्तर पाँच बजे छूटता हो, वह घर आठ बजे से पहले कभी नहीं पहुँते।

आज बिड़ला मन्दिर जाते हुए यशोधर बाबू की निगाह उस अहाते पर पड़ी जिसमें कभी किशन दा का तीन बेडरूम वाला बड़ा क्वार्टर हुआ करता था और जिस पर इन दिनों एक छह मंजिला इमारत बनाई जा रही है। इधर से गुजरते हुए, कभी के 'डी.आई.जेड.' एरिया की बदलती शक्ल देखकर यशोधर बाबू को बुरा–सा लगता है। ये लोग सारा गोल मार्केट क्षेत्र तोड़कर यहाँ एक मंजिला क्वार्टरों की जगह ऊँची इमारतें बना रहे हैं। यशोधर बाबू को पता नहीं कि ये लोग ठीक कर रहे हैं कि गलत कर रहे हैं। उन्हें यह जरूर पता है कि उनकी यादों के गोल मार्केट के ढहाए जाने का गम मनाने के लिए उनका इस क्षेत्र में डटे रहना निहायत जरूरी है। उन्हें एण्ड्रयूजगंज, लक्ष्मीबाई नगर, पण्डारा रोड आदि नई बस्तियों में पद की गरिमा के अनुरूप डी–2 टाइप क्वार्टर मिलने की अच्छी खबर कई बार आई है, मगर हर बार उन्होंने गोल मार्केट छोड़ने से इन्कार कर दिया है। जब उनका क्वार्टर टूटने का नम्बर आया तब भी उन्हें इसी क्षेत्र की इन बस्तियों में बचे हुए क्वार्टरों में एक अपने नाम अलॉट करा लिया। पत्नी के यह पूछने पर कि जब यह भी टूट जाएगा तब क्या करोगे? उन्होंने कहा–तब की तब देखी जाएगी। कहा और उसी तरह मुस्कराए जिस तरह किशन दा यही फिकरा कहकर मुस्कराते थे।

सच तो यह है कि पिछले कई वर्षों से यशोधर बाबू का अपनी पत्नी और बच्चों से हर छोटी–बड़ी बात में मतभेद होने लगा है और इसी वजह से वह घर जल्दी लौटना पसन्द नहीं करते। जब तक बच्चे छोटे थे तब तक वह उनकी पढ़ाई–लिखाई में मदद कर सकते थे। अब बड़ा लड़का एक प्रमुख विज्ञापन संस्था में नौकरी पा गया है। यद्यपि 'समहाउ' यशोधर बाबू को अपने साधारण पुत्र को असाधारण वेतन देने वाली यह नौकरी कुछ समझ में आती नहीं। वह कहते हैं कि डेढ़ हजार रुपया तो हमें अब 'रिटायरमेण्ट' के पास पहुँचकर मिला है, शुरू में ही डेढ़ हजार रुपया देने वाली इस नौकरी में जरूर कुछ पेच होगा। यशोधर जी का दूसरा बेटा दूसरी बार आई.ए.एस. देने की तैयारी कर रहा है और यशोधर बाबू के लिए यह समझ सकता असम्भव है कि

अब यह पिछले साल 'एलोइड सर्विसेज' की सूची में, माना काफी नीचे आ गया था तब इसने 'ज्वाइन' करने से इन्कार कर दिया? उनका तीसरा बेटा 'स्कॉलरशिप' लेकर अमरीका चला गया है और उनकी एकमात्र बेटी ने केवल तमाम प्रस्तावित वर अस्वीकार करती चली जा रही है बल्कि डॉक्टरी की उच्चतम शिक्षा के लिए स्वयं भी अमरीका चले जाने की धमकी दे रही है। यशोधर बाबू जहाँ बच्चों की इस तरक्की से खुश होते हैं वहाँ 'समहाउ' यह भी अनुभव करते हैं कि वह खुशहाली भी कैसी जो अपनों में परायापन पैदा करे। अपने बच्चों द्वारा गरीब रिश्तेदारों की उपेक्षा उन्हें 'समहाउ' जँचती नहीं। 'एनीवे-जनरेशनों' में गैप तो होता ही है सुना-ऐसा कहकर स्वयं को दिलासा देता है पिता।

यद्यपि यशोधर बाबू की पत्नी अपने मूल संस्कारों से किसी भी तरह आधुनिका नहीं है, तथापि बच्चों की तरफदारी करने की मातृसुलभ मजबूरी ने उन्हें भी 'मॉड' बना डाला है। कुछ यह भी है कि जिस समय उनकी शादी हुई थी। यशोधर बाबू के साथ गाँव से आए ताऊ जी और उनके दो विवाहित बेटे भी रहा करते थे। इस संयुक्त परिवार में पीछे ही पीछे बहुओं में गजब के तनाव थे लेकिन ताऊ जी के डर से कोई कुछ कह नहीं पाता था। यशोधर बाबू की पत्नी को शिकायत है कि संयुक्त परिवार वाले उस दौर में पति ने हमारा पक्ष कभी नहीं लिया, बस जिठानियों की चलने दी। उनका यह भी कहना है कि मुझे आचार-व्यवहार के ऐसे बन्धनों में रखा गया मानो मैं जवान औरत नहीं, बुढ़िया थी। जिनते भी नियम इसकी बुढ़िया ताई के लिए थे, वे सब मुझ पर भी लागू करवाए-ऐसा कहती है घरवाली बच्चों से। बच्चे उससे सहानुभूति व्यक्त करते हैं। फिर वह यशोधर जी से उनमुख होकर कहती है-"तुम्हारी ये बाबा आदम के जमाने की बातें मेरे बच्चे नहीं मानते तो इसमें उनका कोई कसूर नहीं। मैं भी इन बातों को उसी हद तक मानूँगी जिस हद तक सुभीता हो। अब अब मेरे कहने से वह सब ढोंग-ढकोसला हो नहीं सकता-साफ बात।"

धर्म-कर्म, कुल-परम्परा सबको ढोंग-ढकोसला कहकर घरवाली आधुनिकाओं-सा आचरण करती है तो यशोधर बाबू 'शानियल बुढ़िया, चटाई का लहँगा' या 'बूढ़ी मुँह मुँहासे, लोक करें तमाशे' कहकर उसके विद्रोह को मजाक में उड़ा देना चाहते हैं, अनदेखा कर देना चाहते हैं, लेकिन यह स्वीकार करने को बाध्य भी होते जाते हैं कि तमाशा स्वयं उनका बन रहा है।

जिस जगह किशनदा का एक क्वार्टर था उसके सामने खड़े होकर एक गहरा निःश्वास छोड़ते हुए यशोधर जी ने अपने से पूछा कि यह 'बेटर' नहीं रहता कि किशन दा की तरह घर-गृहस्थी का बवाल ही न पाला होता और 'लाइफ-कम्युनिटी' के लिए 'डेडीकेट' कर दी होती।

फिर उनका ध्यान इस ओर गया कि बाल-जती किशन दा का बुढ़ापा सुखी नहीं रहा। उसके तमात साथियों ने हौजखास, ग्रीन पार्क, कैलाश कॉलोनी कहीं-न-कहीं जमीन ली, मकान बनवाया, लेकिन उसने कभी इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। रिटायर होने के छह महीने बाद जब उसे क्वार्टर खाली करना पड़ा, तब हद हो गई, उसके द्वारा उपकृत इतने सारे लोगों में से एक ने भी उसे अपने यहां रखने की पेशकश नहीं की। स्वयं यशोधर बाबू उसके सामने ऐसा कोई प्रस्ताव नहीं रख पाए क्योंकि उस समय तक उनकी शादी हो चुकी थी और उनके दो कमरों के क्वार्टर में तीन परिवार रहा करते थे। किशन दा कुछ साल राजेन्द्रनगर में किराये का क्वार्टर लेकर रहा और फिर अपने गाँव लौट गया जहाँ साल-भर बाद उसकी मृत्यु हो गई।

ज्यादा पेंशन खा नहीं सका बेचारा! विचित्र बात यह है कि उसे कोई भी बीमारी नहीं हुई। बस, रिटायर होने के बाद मुरझाता-सूखता ही चला गया। जब उसके एक बिरादर से मृत्यु का कारण पूछा तब उसने यशोधर बाबू को यही जवाब दिया, "जो हुआ होगा।" 'यानी' पता नहीं क्यों हुआ!'

जिन लोगों के बाल-बच्चे नहीं होते, घर-परिवार नहीं होता उनकी रिटायर होने के बाद 'जो हुआ होगा' से भी मौत हो जाती है-यह जानते हैं यशोधर जी। बच्चों का होना भी जरूरी है। यह सही है कि यशोधर जी के बच्चे मनमानी कर रहे हैं और ऐसा संकेत दे रहे हैं कि उनके कारण यशोधर जी को बुढ़ापे में कोई विशेष सुख प्राप्त नहीं होगा, लेकिन यशोधर जी अपने मर्यादा-पुरुष किशन दा से सुनी हुई यह बात नहीं भूले हैं कि गधा-पच्चीसी में कोई क्या करता है, इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए क्योंकि बाद में हर आदमी समझदार हो जाता है। यद्यपि युवा यशोधर को विश्वास नहीं होता तथापि किशन दा बताते हैं कि किस तरह मैंने जवानी में पचासों किस्म की खुराफात की हैं। ककड़ी चुराना, गर्दन मोड़ के मुर्गी मार देना, पीछे की खिड़की से कूदकर 'सेकण्ड शो' सिनेमा देख आना-कौन करम ऐसा है जो तुम्हारे इस किशन दा ने नहीं कर रखा।

जिम्मेदारी सिर पर पड़ेगी तब सब अपने-आप ठीक हो जाएँगे, यह भी किशन दा से विरासत में मिला हुआ एक फिकरा है जिसे यशोधर बाबू अक्सर अपने बच्चों के प्रसंग में दोहराते हैं। उन्हें कभी-कभी लगता है कि अगर मेरे पिता तब नहीं गुजरे होते जब मैं मैट्रिक में था तो शायद मैं भी गधा-पच्चीसी के लम्बे दौर से गुजरता। जिम्मेदारी सिर पर जल्दी पड़ गई तो जल्दी ही जिम्मेदार आदमी भी बन गया। जब तक बाप है

तब तक मौज कर ले। यह बात यशोधर जी कभी-कभी तंजिया कहते हैं। लेकिन कहते हुए उनके चेहरे पर जो मुस्कान खेल जाती है वह बच्चों पर यह प्रकट करती है कि बाप को उनका सनाथ होना, गैरजिम्मेदाराना होना, कुल मिलाकर अच्छा लगता है।

यशोधर बाबू कभी-कभी मन-ही-मन स्वीकार करते हैं कि दुनियादारी में बीवी-बच्चे उनसे अधिक सुलझे हुए हो सकते हैं, लेकिन दो के चार करने वाली दुनिया ही उन्हें कहाँ मंजूर है जो उसकी रीति मंजूर करे। दुनियादारी के हिसाब से बच्चों का यह कहना सही हो सकता है कि बब्बा ने डी.डी.ए. फ्लैट के लिए पैसा न भर के भयंकर भूल की है। किन्तु 'समहाउ' यशोधर बाबू को किशन दा की यह उक्ति अब भी जँचती है-मूरख लोग मकान बनाते हैं, सयाने उनमें रहते हैं। जब तक सरकारी नौकरी तब तक सरकारी क्वार्टर। रिटायर होने पर गाँव का पुश्तैनी घर बस! गाँव का पुश्तैनी घर टूट-फूट चुका है और उस पर इतने लोगों का हक है कि वहाँ जाकर बसना, मरम्मत की जिम्मेदारी ओढ़ना और बेकार के झगड़े मोल लेना होगा-इस बात को यशोधर जी अच्छी तरह समझते हैं। बच्चे बहस में जब वह तर्क दोहराते हैं तब उनसे कोई जवाब देते नहीं बनता। उन्होंने हमेशा यही कल्पना की थी, और आज भी करते हैं कि उनका कोई लड़का उनके रिटायर होने से पहले सरकारी नौकरी में आ जाएगा और क्वार्टर उनके परिवार के पास बना रह सकेगा। अब भी पत्नी द्वारा भविष्य का प्रश्न उठाए जाने पर यशोधर बाबू इस सम्भावना को रेखांकित कर देते हैं जब पत्नी कहती है, ''अगर ऐसा नहीं हुआ तो? आदमी को तो हर तरह से सोचना चाहिए।'' तब यशोधर बाबू टिप्पणी करते हैं कि सब तरह से सोचने वाले हमारी बिरादरी में नहीं होते हैं। उसमें तो एक तरह से सोचने वाले होते हैं। कहते हैं और कहकर लगभग नकली ही हँसी हँसते हैं।

जितना ही इस लोक की जिन्दगी यशोधर बाबू को यह नकली हँसी हँसने के लिए बाध्य कर रही है। उतना ही वह परलोक के बारे में उत्साही होने का यत्न कर रहे हैं। तो उन्होंने बिड़ला मन्दिर की ओर तेज कदम बढ़ाए, लक्ष्मीनारायण के आगे हाथ जोड़े, असीक का फूल चुटिया में खोंसा और पीछे के उस प्रांगण में जा पहुँचे जहां एक महात्मा जी गीता का प्रवचन कर रहे थे।

अफसोस, आज प्रवचन सुनने में यशोधर जी का मन खास लगा नहीं। सच तो यह है कि वह भीतर से बहुत ज्यादा धार्मिक अथवा कर्मकाण्डी हैं नहीं। हाँ, इस सम्बन्ध में अपने मर्यादा-पुरुष किशन दा द्वारा स्थापित मानक हमेशा उनके सामने रहे हैं। जैसे-जैसे उम्र ढल रही है, वैसे-वैसे वह भी किशन दा की तरह रोज मन्दिर जाने,

सन्ध्या-पूजा करने और गीता प्रेस गोरखपुर की किताबें पढ़ने का यत्न करने लगे हैं। अगर कभी उनका मन शिकायत करता है कि इस सबमें लग नहीं पा रहा हूँ तब उससे कहते हैं कि भाई लगना चाहिए। अब तो माया-मोह के साथ-साथ भगवत भजन को भी कुछ स्थान देना होगा कि नहीं? नई पीढ़ी को देकर राजपाट तुम लग जाओ-बाट-वनप्रदेश की। जो करते हैं, जैसा करते हैं, करें। हमें तो अब इस 'वर्ल्ड' की नहीं, उसकी इस 'लाइफ' की नहीं, उसकी चिन्ता करनी हुई। वैसे अगर बच्चे सलाह मांगे, अनुभव का आदर करें तो अच्छा लगता है। अभी नहीं माँगते तो न माँगे।

यशोधर बाबू ने फिर अपने को झिड़का कि यह भी क्या हुआ कि मन को समझाने में फिर भटक गए। गीता-महिमा सुनो।

सुनने लगे मगर व्याख्या में जनार्दन शब्द जो सुनाई पड़ा तो उन्हें अपने जीजा जनार्दन जोशी की याद हो आई। परसों ही कार्ड आया है कि उनकी तबीयत खराब है। यशोधर बाबू सोचने लगे कि जीजा जी का हाल पूछने अहमदाबाद जाना ही होगा। ऐसा सोचते ही उन्हे यह भी ख्याल आया कि यह प्रस्ताव उनकी पत्नी और बच्चों को पसन्द नहीं आएगा। सारा संयुक्त परिवार बिखर गया है। पत्नी और बच्चों की धारणा है कि इस बिखरे परिवार के प्रति यशोधर जी का एकतरफा लगाव आर्थिक दृष्टि से सर्वथा मूर्खतापूर्ण है। यशोधर जी खुशी-गमी के हर मौके पर रिश्तेदारों के यहाँ जाना जरूरी समझते हैं। वह चाहते हैं कि बच्चे भी पारिवारिकता के प्रति उत्साही हों। बच्चे क्रुद्ध ही होते हैं। अभी उस दिन हद हो गई। कमाऊ, बेटे ने यह कह दिया कि आपको बुआ को भेजने के लिए पैसे मैं तो नहीं दूँगा। यशोधरा बाबू को कहना पड़ा कि अभी तुम्हारे बब्बा की इतनी साख है कि सौ रुपया उधार ले सकें।

यशोधर जी का नारा है, 'हमारा तो पैसा ही ऐसा देखा ठहरा'-हमें तो यही परम्परा विरासत में मिली है। इस नारे से उनकी पत्नी बहुत चिढ़ती हैं। पत्नी का कहना है और सही कहना है, कि यशोधर जी का स्वयं का देखा हुआ कुछ भी नहीं है। माँ के मर जाने के बाद छोटी ही उम्र में वह गाँव छोड़कर अपनी विधवा बुआ के पास अल्मोड़ा आ गऐ थे। बुआ का कोई ऐसा लम्बा-चौड़ा परिवार तो था नहीं जहाँ कि यशोधर जी कुछ देखते और परम्परा के रंग में रंगते। मैट्रिक पास करते ही वह दिल्ली आ गए और यहाँ रहे कुँआरे कृष्णानन्द जी के साथ। कुँआरे की गिरस्ती में देखने को होता क्या है? पत्नी आग्रहपूर्वक कहती है कि कुछ नहीं, तुम अपने उन किशन दा के मुँह से सुनी-सुनाई बातों को अपनी आँखों-देखी यादें बना डालते हो। किशन दा को जो भी मालूम था वह उनका पुराने गँवई लोगों से सीखा हुआ ठहरा। दिल्ली आकर

उन्होंनें घर-परिवार तो बसाया नहीं जो जान पाते कि कौन से रिवाज निभा सकते हैं, कौन से नहीं। पत्नी का कहना है किशन दा तो थे ही जन्म के बूढ़े, तुम्हें क्या सुर लगा जो उनका बुढ़ापा खुद ओढ़ने लगे हो? तुम शुरू में तो ऐसे नहीं थे, शादी के बाद मैंने तुम्हें देख जो क्या नहीं रखा है। हफ्ते में दो-दो सिनेमा देखते थे। हर इतवार भड्डू चढ़ाकर अपने लिए शिकार पकाते थे। गजल गाते थे गजल। गजल हुई और सहगल के गाने।

यशोधर बाबू स्वीकार करते हैं कि उनमें कुछ परिवर्तन हुआ है, लेकिन वह समझते हैं कि उम्र के साथ-साथ बुजुर्गियत आना ठीक ही है। पत्नी से वह कहते हैं कि जिस तरह तुमने बुढ्याकाल यह बगैरह बाँह का ब्लाउज पहनना, यह रसोई से बाहर भात-दाल खा लेना, यह ऊंची हील वाली सैण्डल पहनना, और ऐसे ही पचासों काम अपनी बेटी की सलाह पर शुरू कर दिए हैं, मुझ तो वे 'समहाउ इम्प्रॉपर' ही मालूम होते हैं।'एनीवे' मैं तुम्हें ऐसा करने से रोक नहीं रहा, 'देयरफोर' तुम लोगों को भी मेरे जीने के ढंग पर कोई एतराज होना नहीं चाहिए।

यशोधर बाबू को धार्मिक प्रवचन सुनते हुए भी अपना पारिवारिक चिन्तन में ध्यान डूबा रहना अच्छा नहीं लगा। सुबह-शाम सन्ध्या करने के बाद जब वह थोड़ा ध्यान लगाने की कोशिश करते हैं तब भी मन किसी परमसत्ता नहीं, इसी परिवार में लीन होता है। यशोधर जी चाहते हैं कि ध्यान लगाने की सही विधि सीखें। साथ ही वह अपने से भी कहते हैं कि 'परहैप्स' ऐसी चीजों के लिए 'रिटायर' होने के बाद का समय ही 'प्रॉपर' ठहरा। वानप्रस्थ के लिए 'प्रेसक्राइव्ड' ठहरीं ये चीजें। वानप्रस्थ के लिए यशोधर बाबू का अपने पुश्तैनी गाँव जाने का इरादा है कि रिटायर होकर।'फॉर फ्रॉम द मैडिंग क्राउड' -समझे!

इस तरह की तमाम बातें यशोधर बाबू पैदाइशी बुजुर्गवार किशन दा के शब्दों में और उनके ही लहजे में कहा करते हैं और कहकर उनकी तरह की वह झेंपी-सी लगभग नकली-सी हँसी हँस देते हैं। जब तक किशन दा दिल्ली में रहे यशोधर बाबू नित्य नियम से हर दूसरी शाम उनके दरबार में हाजिरी लगाने पहुँचते रहे।

स्वयं किशन दा हर सुबह सैर से लौटते हुए अपने इस मानसपुत्र के क्वार्टर में झाँकना और 'हेल्दी वेल्दी एण्ड वाइज' बन रहा है न भाऊ, ऐसा कहना कभी नहीं भूलते। जब यशोधर बाबू दिल्ली आए थे तब उनकी सुबह थोड़ी देर से उठने की आदत थी। किशन दा ने उन्हें रोज सुबह झकझोरकर उठाने और साथ सैर पर ले जाना शुरू किया और यह मन्त्र दिया कि 'अर्ली टु बेड एण्ड अर्ली टु राइज मेकस ए मैन हेल्दी वेल्दी एण्ड वाइज' जब यशोधर बाबू अलग क्वार्टर में रहने लगे और अपनी गृहस्थी में डूब गए तब भी किशन दा ने यह देखते रहना जरूरी समझा कि भाऊ यानी बच्चा सवेरे जल्दी उठता है कि नहीं। हर सवेरे वह किशन दा से अनुरोध करते कि चाय पीकर जाएँ। किशन दा कभी-कभी इस अनुरोध की रक्षा कर देते। यशोधर बाबू ने किशन दा को घर और दफ्तर में विभिन्न रूपों में देखा है लेकिन किशन दा की ही जो छवि उनके मन में बसी हुई है वह सुबह की सैर निकले किशन दा की है-कुर्त्ते-पैजामें के ऊपर ऊनी गाउन पहने, सिर पर गोल विलायती टोपी और पाँवों में देशी खड़ाऊ धारण किए हुआ और हाथ में (कुत्तों को भगाने के लिए) एक छड़ी लिए हुए।

जब तक किशन दा दिल्ली में रहे तब तक यशोधर बाबू ने उनके पट्टशिष्य और उत्साही कार्यकर्ता की भूमिका पूरी निष्ठा से निभाई। किशन दा के चले जाने के बाद उन्होंने ही उनकी कई परम्पराओं को जीवित रखने की कोशिश की और इस कोशिश में पत्नी और बच्चों को नाराज किया। घर में होली गवाना, 'जन्यो पुन्यूँ' के दिन सब कुमाऊँनियों को जनेऊ बदलने के लिए अपने घर आमन्त्रित करना, रामलीला की तालीम के लिए क्वार्टर का एक कमरा दे देना-ये और ऐसे ही कई और काम यशोधर बाबू ने किशन दा से विरासत में लिए थे। उनकी पत्नी और बच्चों को इन आयोजनों पर होने वाला खर्च और इन आयोजनों में होने वाला शोर, दोनों ही सख्त नापसन्द थे। बदतर यही कि इस आयोजनों के लिए समाज में भी कोई खास उत्साह रह नहीं गया है।

यशोधर जी चाहते हैं कि उन्हें समाज का सम्मानित बुजर्ग माना जाए, लेकिन जब समाज ही न हो तो यह पद उन्हें क्योंकर मिले? यशोधर जी चाहते हैं कि बच्चे मेरा आदर करें और उसी तरह हर बात में मुझसे सलाह लें जिस तरह मैं किशन दा से लिया करता था। यशोधर बाबू 'डेमोक्रेट' हैं और हरगिज यह दुराग्रह नहीं करना चाहते कि बच्चे उनके कहे को पत्थर की लकीर समझें। लेनिक यह भी क्या हुआ कि पूछा न ताछा, जिसके मन में जैसा आया, करता रहा! 'ग्राण्टेड' तुम्हारी 'नॉलेज' ज्यादा होगी, लेकिन 'एक्सपीरिएन्स' को कोई 'सबस्टिट्यूट' ठहरा नहीं बेटा! मानों न मानो, झूठे मुँह से सही-एक बार पूछ तो लिया करो, ऐसा कहते हैं यशोधर बाबू और बच्चे यही उत्तर देते हैं, बब्बा, आप तो हद करते हैं! जो बात आप जानते ही नहीं आपसे क्यों पूछें?

प्रवचन सुनने के बाद यशोधर बाबू सब्जी मण्डी गए। यशोधर बाबू को अच्छा लगता अगर उनके बेटे बड़े होने पर अपनी तरफ से यह प्रस्ताव करते कि दूध लाना,

राशन लाना, सी.जी.एच. डिस्पेन्सरी से दवा लाना, सदर बाजार जाकर दालें लाना, पहाड़गंज से सब्जी लाना, डिपो से कोयला लाना–ये सब काम आप छोड़ दें, अब हम कर दिया करेंगे। एकाध बार बेटों से खुद उन्होंने कहा, तब वे एक–दूसरे से कहने लगे कि तू किया कर, तू क्यों नहीं करता! इतना कुहराम मचा और लड़कों ने एक–दूसरे को इतना ज्यादा बुरा–भला कहा कि यशोधर बाबू ने इस विषय को उठाना भी बन्द कर दिया। जब से बड़ा बेटा विज्ञापन कम्पनी में बड़ी नौकरी पा गया है, तब से बच्चों का इस प्रसंग में एक ही वक्तव्य है –बब्बा, हमारी समझ में नहीं आता कि इन कामों के लिए आप एक नौकर क्यों नहीं रख लेते? इजा को भी आराम हो जाएगा। कमाऊ बेटा नमक छिड़कते हुए यह भी कहता कि नौकर की तनख्वाह मैं दे दूँगा।

यशोधर बाबू को यही 'समहाउ इम्प्रॉपर' मालूम होता है कि उनका बेटा अपना वेतन उनके हाथ में नहीं रखे। यही सही है कि वेतन स्वयं बेटे के अपने हाथ में नहीं आता, 'एकाउण्ट ट्रान्सफर' द्वारा बैंक में जाता है। लेकिन क्या बेटा बाप के साथ 'ज्वाइण्ट एकाउण्ट' नहीं खोल सकता था? झूठे मुँह से ही सही, एक बार ऐसा कहता तो! तिस पर बेटे का अपने वेतन को अपना समझते हुए बार–बार कहना कि यह काम मैं अपने पैसे से कर रहा हूँ, आपके से नहीं जो नुक्ताचीनी करें। हम क्रम में बेटे ने यह क्वार्टर तक अपना बना लिया है। अपना वेतन अपने ढंग से वह इस घर में खर्च कर रहा है। कभी 'कारपेट' बिछवा रहा है, कभी पर्दे लगवा रहा है। कभी सोफा आ रहा है। कभी 'डनलप' वाला 'डबलबेड' और सिंगार–मेज। कभी टी.वी., कभी फ्रिज। क्या हुआ यह? और ऐसा भी नहीं कहता कि लीजिए पिताजी, मैं आपके लिए टी.वी. ले आया हूँ। कहता यही है कि यह मेरा टी.वी. है, समझे, इसे कोई न छुआ करे। क्वार्टर ही उसका हो गया। यह अच्छी रही। अब इनका एक नौकर भी रखो घर में। इनका नौकर होगा तो इनके लिए ही होगा। हमारे लिए तो क्या होगा–ऐसा समझाते हैं यशोधर बाबू घरवाली को। काम सब अपने हाथ से ही ठीक होते हैं। नौकरों को सौंपा कारबार चौपट हुआ। कहते हैं यशोधर बाबू, पत्नी भी सुनती है, मगर नहीं सुनती। पर सुनकर अब चिढ़ती भी नहीं। सब्जी का झोला लेकर यशोधर बाबू खुदी हुई सड़कों और टूटे हुए क्वार्टर के मलवे से पटे हुए नालों को पार करके 'स्क्वेअर' के उस कोने में पहुँचे जिसमें तीन क्वार्टर अब भी साबुत खड़े हुए थे। उन तीन में से कुल एक को अब तक एक सिरफिरा आबाद किए हुए है। बाहर बदरंग तख्ती में उसका नाम लिखा–वाई .डी.पन्त।

इस क्वार्टर के पास पहुँचकर आज वाई.डी. पन्त को पहले धोखा हुआ कि किसी गलत जगह आ गए हैं। क्वार्टर के बाहर एक कार थी, कुछ स्कूटर–मोटरसाइकिल। बहुत–से लोग विदा ले दे रहे थे। बाहर बरामदे में रंगीन कागज की झालरें और गुब्बारे लटके हुए थे और रंग–बिरंगी रोशनियाँ जली हुई थीं।

फिर उन्हें अपना बड़ा, बेटा भूषण पहचान में आया, जिससे कार में बैठा हुआ कोई साहब हाथ मिला रहा था और कह रहा था, ''गिव माई वार्म रिगार्ड्स टु योर फादर।''

यशोधर बाबू ठिठक गए। उन्होंने अपने से पूछा–क्यों, आज मेरे क्वार्टर में क्या हो रहा होगा? उसका जवाब भी उन्होंने अपने को दिया–जो करते होंगे यह लौंडे–मौंडे, इनकी माया यही जानें!

अब यशोधर बाबू का ध्यान इस ओर गया कि उनकी पत्नी और उनकी बेटी भी कुछ मेमसाबों को विदा करते हुए बरामदे में खड़ी हैं। लड़की जीन और बगैर बाँह का टॉप पहने है। यशोधर बाबू उससे कई मर्तबा कह चुके हैं कि तुम्हारी यह पतलून और सैण्डो बनैन यानी ड्रेस मुझे तो 'समहाउ इम्प्रॉपर' मालूम होती है। लेकिन वह भी जिद्दी ऐसी है कि इसे ही पहनती है। और पत्नी भी उसी की तरफदारी करती है। कहती है–वह सिर पर पल्लू–वल्लू मैंने कर लिया बहुत तुम्हारे कहने पर, समझे मेरी बेटी वही करेगी जो दुनिया कर रही है। पुत्री का पक्ष लेने वाली यह पत्नी इस समय होंठों पर लाली और बालों पर खिजाब लगाए हुए थी जबकि ये दोनों ही चीजें, आप कुछ भी कहिए, यशोधर बाबू को 'समहाउ इम्प्रॉपर' ही मालूम होती हैं।

आधुनिक किस्म के अजनबी लोगों की भीड़ देखकर यशोधर बाबू अँधेरे में ही दुबके रहे। उनके बच्चों को इसीलिए शिकायत है कि बब्बा तो 'एल.डी.सी. टाइपों से ही 'मिक्स' करते हैं।

जब कार वाले लोग चले गए तब यशोधर बाबू ने अपने क्वार्टर में कदम रखने का साहस जुटाया। भीतर अब भी पार्टी चल रही थी। उनके पुत्र–पुत्रियों के कई मित्र तथा उनके कुछ रिश्तेदार जमे हुए थे। उनके बड़े बेटे ने झिड़की–सुनाई, ''बब्बा, आप भी हद करते हैं। 'सिल्वर वेडिंग' के दिन साढ़े आठ बजे घर पहुँचे हैं। अभी तक मेरे बॉस आपकी राह देख रहे थे।''

''हम लोगों के यहाँ 'सिल्वर वेडिंग' कब से होने लगी? '' यशोधर बाबू ने शर्मीली हँसी हँस दी।

''जब से तुम्हारा बेटा डेढ़ हजार माहवार कमाने लगा, तब से।'' यह टिप्पणी थी

चन्द्रदत्त तिवारी की जो इसी साल 'एस.ए.एस.' पास हुआ है और दूर के रिश्ते से यशोधर बाबू का भानजा लगता है।

यशोधर बाबू को अपने बेटों से तमाम तरह की शिकायतें हैं, लेकिन कुल मिलाकर उन्हें यह अच्छा लगता है कि लोग-बाग उन्हें ईर्ष्या का पात्र समझते हैं। भले ही उन्हें भूषण का गैर-सरकारी नौकरी करना समझ में न आता हो तथापि वह यह बखूबी समझते हैं कि इनती छोटी उम्र में डेढ़ हजार माहवार प्लस कन्वेन्स एलाउन्स एण्ड' तुम्हारा 'अदर वर्क्स' पा जाना कोई मामूली बात नहीं है। इसी तरह भले ही यशोधर बाबू ने बेटों की खरीदी हुई हर नई चीज के सन्दर्भ में यही टिप्पणी की हो कि ये क्या हुई 'समहाउ' मेरी तो समझ में आता नहीं। इसकी क्या जरूरत थी, तथापि उन्हें कहीं इस बात से थोड़ी खुशी भी होती है कि इस चीज के आ जाने से उन्हें नये दौर के, निश्चय ही गलत, मानकों के अनुसार बड़ा आदमी मान लिया जा रहा है। मिसाल के लिए जब बेटों ने गैस का चूल्हा जुटाया तब यशोधर बाबू ने उसका विरोध किया और आज भी वह यही कहते हैं कि इस पर बनी रोटी मुझे तो 'समहाउ' रोटी जैसी लगती नहीं, तथापि वह जानते हैं कि गैस न होने पर इस नगर में चपरासी श्रेणी के मान लिए जाते। इसी तरह फ्रिज के सन्दर्भ में आज भी यशोधर बाबू यही कहते हैं कि मेरी समझ में आज तक यह नहीं आया कि इसका फायदा क्या है। बासी खाना खाना अच्छी आदत नहीं ठहरी। और यह ठहरा इसी काम का कि सुबह बना के रख दिया और शाम को खाया। इसमें रखा हुआ भी मेरे मन को तो भाता नहीं, गला पकड़ लेता है। कहते हैं, मगर इस बात से सन्तुष्ट होते हैं कि घर आए साधारण हैसियत वाले मेहमान इस फ्रिज का पानी पीकर अपने को धन्य अनुभव करते हैं।

अपनी 'सिल्वर वेडिंग' की यह भव्य पार्टी भी यशोधरबाबू को 'समहाउ इम्प्रॉपर' ही लगी तथापि उन्हें इस बात से सन्तोष हुआ कि जिस अनाथ यशोधर के जन्मदिन तक पर कभी लड्डू नहीं आए, जिसने अपना विवाह भी 'कोऑपरेटिव' से दो-चार हजार कर्ज निकालकर किया, बगैरह किसी खास धूमधाम के, उसके विवाह की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर केक, चार तरह की मिठाई, चार तरह की नमकीन, फल, 'कोल्ड ड्रिंक्स', चाय और नजरअन्दाज कैसे करें, व्हिस्की, सब मौजूद हैं।

व्हिस्की की लगभग खाली बोतल को इंगित करते हुए यशोधर बाबू ने पूछा, ''क्यों भूषण, व्हाट इज़ दिस?''

भूषण बोला,''व्हिस्की है, और क्या। मैंने अपने 'बॉस' को, 'कुलीग्स' को 'इनवाइट' किया था। उनको क्या पिलाता, शिकंजी?''

''शिकंजी जहर होती होगी'', यशोधर बाबू ने व्यंग्य किया, ''जब हमारे यहाँ व्हिस्की 'सर्व' करने का कोई 'ट्रेडिशन' ही नहीं ठहरा, तब हमें कोई 'फोर्स' तो क्या कर सकता है? मैं तो कहता हूँ कि यह 'पार्टी' करने की भी क्या जरूरत पड़ गई थी? किसी ने कथा था तुमसे? सवेरे जब मैं गया था तो इसकी कोई बात नहीं थी।''

एक कोने में बैठकर कोला में ढकी हुई व्हिस्की पीता हुआ गिरीश बोला, ''गुनाहगार मैं हूँ जीजा जी। मुझे आज सुबह बैठे-बैठे याद आई कि आपकी शादी छह फरवरी सन् सैंतालीस को हुई थी। और इस हिसाब से आज उसे पच्चीस साल पूरे हो गए हैं। मैंने आपके दफ्तर फोन किया लेकिन शायद आपका फोन खराब था। तब मैंने भूषण को फोन किया। भूषण ने कहा, शाम को आ जाइए, 'पार्टी' करते हैं। मैंने अपने 'बॉस' को भी बुला लूँगा इसी बहाने।''

गिरीश यशोधर बाबू की पत्नी का चचेरा भाई है। बड़ी कम्पनी में 'मार्केटिंग मैनेजर' है और इसकी सहायता से ही यशोधर बाबू के बेटे को विज्ञापन कम्पनी में बढ़िया नौकरी मिली है। यशोधर बाबू को अपना यह सम्पन्न साला 'समहाउ' भयंकर ओछाट यानी ओछेपन का धनी मालूम होता है। उन्हें लगता है कि इसी ने भूषण को बिगाड़ दिया है। कभी कहते हैं ऐसा तो पत्नी बरस पड़ती है-''जिन्दगी बना दी तुम्हारे 'सेकण्ड क्लास' बी.ए. बेटे की, कहते हो बिगाड़ दिया।''

भूषण ने अपने मित्रों-सहयोगियों का यशोधर बाबू से परिचय कराना शुरू किया। उनकी 'मैनी हैप्पी रिटर्न्स ऑफ डे' का 'थैंक्यू' कहकर जवाब देते हुए, जिन लोगों का नाम पहले बता दिया गया हो उनकी ओर 'वाई.डी. पन्त , होम मिनिस्ट्री, भूषण' स फादर' कहकर स्वयं हाथ बढ़ा देने में यशोधर बाबू ने हर क्षण यह बताने की कोशिश की कि भले ही वह सरकारी कुमाऊँनी हैं तथापि विलायती रीति-रिवाज से भी भली-भाँति परिचित हैं। किशन दा कहा करते थे कि आना सब कुछ चाहिए, सीखना हर एक की बात ठहरी, लेकिन अपनी छोड़ना नहीं हुई। टाई-सूट पहनना आना चाहिए लेकिन धोती-कुर्ता अपनी पोशाक है यह नहीं भूलना चाहिए।

अब बच्चों ने एक और विलायती परम्परा के लिए आग्रह किया-यशोधर बाबू अपनी पत्नी के साथ 'केक' काटें। घरवाले पहली थोड़ा शरमाई लेकिन जब बेटी ने हाथ खींचा तब उसे 'केक' के पीछे जा खड़ा होने में कोई हिचक नहीं हुई, वहीं से उसने पति को भी पुकारा।

यशोधर बाबू को 'केक काटना' बचकानी बात मालूम हुई। बेटी उन्हें लगभग

खींचकर ले गई। यशोधर बाबू ने कहा, ''समहाउ आई डॉण्ट लाइक ऑल दिस'', लेकिन 'एनीवे' उन्होंने केक काट ही दिया। गिरीश ने उनकी यह अनमनी किंतु सन्तुष्ट छवि कैमरे में कैद कर ली। अब पत्नी-पति से कहा गया कि वे 'केक' से मुँह मीठा करें एक-दूसरे का। पत्नी ने खा लिया मगर यशोधर बाबू ने इन्कार कर दिया। उनका कहना था कि मैं केक खाता नहीं, इसमें अण्डा पड़ा होता है। उन्हें याद दिलाया गया कि अभी कुछ वर्षों पहले तक आप मांसहारी थे, एक टुकड़ा 'केक' खा लेने में क्या हो जाएगा? लेकिन वह नहीं माने। तब उनसे अनुरोध किया गया कि लड्डू ही खा लें। भूषण के एक मित्र ने लड्डू उठाकर मुँह में ठूँसने का यत्न किया। लेकिन यशोधर बाबू इसके लिए भी राजी नहीं हुए। उनका कहना था कि मैंने अब तक सन्ध्या नहीं की है। इस पर भूषण ने झुंझलाकर कहा, ''तो बब्बा, पहले जाकर सन्ध्या कीजिए। आपकी वजह से हम लोग कब तक रुके रहेंगे।''

''नहीं-नहीं, आप सब लोग खाइए'', यशोधर बाबू ने बच्चों के दोस्तों से कहा, ''प्लीज, गो अहेड, नो फॉरमैल्टी।''

यशोधर बाबू ने आज पूजा में कुछ ज्यादा ही देर लगाई। इतनी देर कि ज्यादातर मेहमान उठकर चले जाएँ।

उनकी पत्नी, उनके बच्चे बारी-बारी आकर झाँकते रहे और कहते रहे- ''जल्दी कीजिए, मेहमान जा रहे हैं।''

शाम की पन्द्रह मिनट की पूजा को लगभग पच्चीस मिनट तक खींच लेने के बाद भी जब बैठक से मेहमानों की आवाजें आती सुनाई दीं तब यशोधर बाबू पद्मासन साधकर ध्यान लगाने बैठ गए। वह चाहते थे कि उन्हें प्रकाश का एक नीला बिन्दु दिखाई दे, मगर उन्हे किशन दा दिखाई दे रहे थे।

यशोधर बाबू किशन दा से पूछ रहे थे कि 'जो हुआ होगा' से आप कैसे मर गए? किशन दा कह रहे थे कि भाऊ, सभी जन इसी, जो हुआ होगा, से मरते हैं। गृहस्थ हों, ब्रह्मचारी हों, अमीर हों, गरीब हों, मरते 'जो हुआ होगा' से ही हैं। हाँ-हाँ, शुरू में और आखिर में, सब अकेले ही होते हैं, अपना कोई नहीं ठहरा दुनिया में, बस एक नियम अपना हुआ।

यशोधर बाबू ने पाजामा-कुर्ता पर ऊनी ड्रेसिंग गाउन पहने, सिर पर गोल विलायती टोपी, पाँवों में देशी खड़ाऊँ और हाथ में डण्डा धारण किए इस किशन दा से अकेलेपन के विषय में बहस करनी चाही, उनका विरोध करने के लिए नहीं बल्कि बात कुछ

और अच्छी तरह समझने के लिए।

हर रविवार किशन दा शाम को ठीक चार बजे यशोधर बाबू के घर आया करते थे। उनके लिए गरमागरम चाय बनवाई जाती थी। उनका कहना था कि जिसे फूँक मारकर न पीना पड़े वह चाय कैसी। चाय सुड़कते हुए किशन दा प्रवचन करते थे और यशोधर बाबू बीच-बीच में शंकाएँ उठाते थे।

यशोधर बाबू को लगता है कि किशन दा आज भी मेरा मार्गदर्शन कर सकेंगे और बता सकेंगे कि मेरी बीवी-बच्चे जो कुछ भी कर रहे हैं उसके विषय में मेरा रवैया क्या होना चाहिए?

लेकिन किशन दा तो वही अकेलापन का खटराग अलापने पर आमादा से मालूम होते हैं।

कैसी बीवी, कहाँ के बच्चे। यह सब माया ठहरी और यह जो भूषण तेरा आज इतना उछल रहा है वह भी किसी दिन इतना ही अकेला और असाहय अनुभव करेगा जितना कि आज तू कर रहा है।

यशोधर बाबू बात आगे बढ़ाते लेकिन उनकी घरवाली उन्हें झिड़कते हुए आ पहुंची कि क्या आज पूजा में ही बैठे रहोगे? यशोधर बाबू आसन से उठे और उन्होंने दबे स्वर में पूछा ''मेहमान गए?'' पत्नी ने बताया, ''कुछ गए, कुछ हैं।'' उन्होंने जानना चाहा कि कौन-कौन हैं? आश्वस्त होने पर कि सभी रिश्तेदार ही हैं वह उसी लाल गमछे में बैठक में चले गए जिसे पहनकर वह सन्ध्या पर बैठे थे। यह गमछा पहनने की आदत भी उन्हें किशन दा से विरासत में मिली है और उनके बच्चे इसके सख्त खिलाफ हैं।

''एवरीबडी गॉन, पार्टी ओवर?'' यशोधर बाबू ने मुस्कराकर अपनी बेटी से पूछा, अब गोया गमछा पहने रहा जा सकता है?

उनकी बेटी झल्लाई-''लोग चले गए इसका मतलब यह थोड़ी है कि आप गमछा पहनकर बैठक में आ जाएँ। बब्बा , 'यू आर द लिमिट'।''

''बेटी, हमें जिसमें सज आयेगी वहीं करेंगे ना, '' यशोधर बाबू ने कहा, ''तुम्हारी तरह जीन पहनकर हमें तो सज आती नहीं।''

यशोधर बाबू की दृष्टि मेज पर रखे कुछ पैकटों पर पड़ी। बोले, ''ये कौन भूले जा रहा है?''

भूषण बोला, ''आपके लिए 'प्रेजेण्ट' हैं, खोलिए ना।''

''अह, इस उम्र में क्या हो रहा 'प्रेजेण्ट-व्रीजेण्ट! ' तुम खोलो, तुम्हीं इस्तेमाल करो।'' यशोधर बाबू शर्मीली हँसी हँसे।

भूषण सबसे बड़ा पैकेट उठाकर और उसे खोलते हुए बोला, ''इसे तो ले लीजिए। यह मैं आपके लिए लाया हूँ। ऊनी 'ड्रेसिंग गाउन' है। आप सवेरे जब दूध लेने जाते हैं बब्बा, फटा 'प्लोवर' पहन के चले जाते हैं जो बहुत ही बुरा लगता है। आप इसे पहन के जाया कीजिए।''

बेटी पिता का पाजामा-कुर्ता उठा लाई कि इसे पहनकर गाउन पहनें।

थोड़ा-सा ना-नुच करने के बाद यशोधर जी ने इस आग्रह की रक्षा की। 'गाउन' का 'सैश' कसते हुए उन्होंने कहा, ''अच्छा तो यह ठहरा 'ड्रेसिंग गाउन'।'' उन्होंने कहा और उनकी आँखों की कोर में जरा-सी नमी चमक गई।

यह कहना मुश्किल है कि इस घड़ी उन्हें यह बात चुभ गई कि उनका जो बेटा यह कह रहा है कि आप सवेरे यह 'ड्रेसिंग गाउन' पहनकर दूध लाने जाया करें, वह यह नहीं कर रहा है कि दूध मैं ला दिया करूंगा या कि इस गाउन को पहनकर उनके अंगों में वह किशन दा उतर आया है जिसकी मौत 'जो हुआ होगा' से हुई।

मनोहर श्याम जोशी

जन्म : 9 अगस्त, 1933

प्रमुख कृतियाँ : कुरु कुरु स्वाहा, कसप, हरिया हर्क्यूलिस की हैरानी, क्याप (उपन्यास) लखनऊ मेटा लखनऊ, कक्काजी कटिम

दिवंगत

रमज़ान में मौत

—मंजूर एहतेशाम

असद मियाँ की आँखें बन्द थीं। एक पल के लिए मैंने सोचा , वापिस चला जाऊँ। दूसरे ही पल असद मियाँ आँखें खोले देख रहे थे। उन आँखों में कोहरा भरी सुबह-सी रोशनी थी।

-खुदा के लिए अयाज़...सीना दर्द से टूटा जा रहा है।

सुहेला भाभी आइने के सामने खड़ी हुई डैबिंग करके चेहरे के धब्बे मिटा रही थीं। कमरे में जलते हुए बल्ब की रोशनी धीरे-धीरे बाहर फैलते अँधेरे के साथ उभरने लगी थी। सूरज डूबने में कुछ और देर थी।

-जमील! अरे, जमील! सुहेला भाभी ने आवाज़ दी।

असद मियाँ के पलंग की चादर सफ़ेद थी। पलंग के नीचे दो फटी हुई चप्पलों में उलझी हुई एक सलाबची थी, जिसे शायद वह पिछले कई घंटों से लगातार इस्तेमाल करते रहे थे। उनके पैर गन्दे और एड़ियों की खाल चटख़ी हुई थी। बिस्तर पर चादर का वह हिस्सा जहाँ उनके पैर थे, दाग़दार हो चुका था।

-ज़फर भाई आ रहे हैं, मैंने असद मियाँ से आँखें बचाते हुए कहना चाहा, लेकिन फिर मैंने देखा आँखें तो वो ख़ुद ही बन्द कर चुके थे। सुहेला भाभी ने मज़ाक उड़ाती हुई-सी नज़रों से मेरी तरफ़ देखा और फिर आवाज़ देने लगीं-जमील... अरे, कहाँ ग़ारत हो गया?

-अरे, आ रहा हूँ। कहीं बाहर से आवाज़ आई।

दूर आसमान में चमक-सी फैली। एक सकते के बाद धमाका हुआ।

असद मियाँ की आंखों के पपोटे हलके से हिले, लेकिन आँखें बन्द ही रहीं।

...दो...तीन...चार तोपें चल रही थीं। इफ़्तार का वक़्त हो गया था।

–लेकिन यार तोपें ही क्यों? ये तो बिल्कुल ऐसा लगता है, जैसे किसी को सलामी दी जा रही हो। सायरन भी तो बजाया जा सकता है? एक बार मेरे दोस्त ने मुझसे पूछा था और मैं हँसकर रह गया था।

–अगर ख़ुद साफ नहीं रह सकते तो दूसरों को तो चैन से करने दें! खुद के पलंग पर नहीं लेट सके, सारी चादर का सत्यानाश कर दिया! सुहेला भाभी खुद को एक ख़ूबसूरत सिंगार मेज़ में लगे आइने में देखते हुए बुदबुदा रही थीं– और अगर चाँद दिख गया तो कल ईद है। कोई धुली चादर भी न होगी।

मैंने देखा, आइना बिल्कुल बेदाग़ था, लेकिन लकड़ी के बने मेज़ के फ़्रेम की पॉलिश जगह-जगह से उड़ गई थी और कई जगह पड़े हुए गड्ढों से लकड़ी का अपना रंग झाँकने लगा था। आइने के नीचे बेगिनती शीशियाँ रखी हुई थीं–कॉस्मेटिक्स, परफ्यूम्स और स्प्रेज़ की सुन्दर शीशियाँ जिनमें से, मैंने अन्दाज़ा लगाया, ज्यादातर ख़ाली होंगी।

जमील तेज़ी से कमरे में दाख़िल हुआ। हाथ उठाकर उसने सलाम किया। फिर अजीब तरह से मुस्कुराकर अपने बाप असद मियाँ की तरफ़ देखने लगा।

–क्या कह रही थीं, अम्मी?–फिर जैसे मुझसे छुपाते हुए असद मियाँ की तरफ़ इशारा करके उसने आँखों-ही-आँखों में कोई सवाल अपनी माँ से पूछा।

सुहेला भाभी ने होंठ सिकोड़कर गर्दन हिला दी।

–बुलाने के लिए तुम्हें घंटों आवाज़ें देनी पड़ती हैं। उनके लहज़े में तेज़ी थी।

–मुझे क्या मालूम, आप आ गईं? बग़ैर कहे तो चली गई थीं। जमील ने दूँबदूँ जवाब दिया।

–चाँद दिखा?

–ऊँहुँ।

–देखो, तुम कहीं जाना मत। अभी थोड़ी देर बाद तुम्हें मेरे साथ चलना है।

–अम्मी! जमील ने शिकायती स्वर में कहा–शन्नो और दूसरे लड़के मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं। मुझे उनके साथ जाना है।

–जाना-वाना कहीं नहीं है, आप मेरा इन्तज़ार कीजिए। कहते हुए सुहेला भाभी भीतरी कमरे में चली गई।

केवल असद मियाँ के साँस लेने की आवाज़! जफ़र मियाँ अभी तक नहीं आए थे। क्या वह आएँगे?

–यार! तुम चलो, मैंने इफ्तार पर कुछ दोस्तों को बुलाया है। असद मियाँ के तीसरे बुलावे पर उन्होंने मुझसे कहा था। मैं शहनाज़ आपा के पास बैठा ईद के शीर-खुर्मा की लिस्ट बना रहा था। तुम चलो, मैं आता हूँ।

असद मियाँ के सिरहाने कैलेंडर के पन्ने कई महीनों से नहीं बदले गए थे। कमरे के एक हिस्से में काली अपहोलस्ट्री के गहरे सोफे बिछे हुए थे। कोने में लम्बे-से बुकशेल्फ़ पर तरतीब और बेतरतीबी के साथ बहुत-सी किताबें थीं–इन्साइक्लोपीडियाज़? बिज़नेस डायरेक्ट्रीज, दाईं तरफ दीवार पर एक बिदकते घोड़े की पेंटिंग टँगी हुई थी। सेंटर टेबल के नीचे का क़ालीन फट चुका था। वैसे भी क़ालीन का डिज़ाइन ज़्यादा इस्तेमाल की वजह से डल हो गया था। केवल कुछ उड़े-उड़े से रंग थे जिनमें बुनियादी यक्सानियत शायद धूल की शिदत्त की वजह से थी।

–जफ़र नहीं आए अब तक? असद मियाँ की झिलमिलाती-सी आँखे मेरी तरफ़ देख रही थीं।

–कुछ दोस्तों को खाने बुलाया है, आते ही होंगे। मैंने धीरे से कहा–कब से तबीयत ख़राब है?

–ऐं...? तबीयत...? चार-पाँच दिन से खराब है। सीने में सख़्त दर्द है, दिल बिल्कुल बैठा जा रहा है, उनकी साँस ऊपर-नीचे हो रही थी।

–तमशाबाज़ी है! निरी ऐक्टिंग! और सारे मर्ज़ों की एक ही दवा है–पैथिडीन! असद मियाँ के दूसरे बुलावे पर ज़फ़र मियाँ ने झुँझलाकर कहा था।–कुछ और काम भी करने हैं! चाँद दिख गया तो कल ईद है। मज़ाक़ बना लिया है उन्होंने तो–फिर घड़ी खोलकर यूँ ही झटका देने के बाद वह उसे कान से लगाकर सुनने लगे थे। उस समय मुझे गाँव से आए कोई एक घंटा हुआ था।

–किसी डॉक्टर को दिखाया? मैंने असद मियाँ की कलाई थामते हुए पूछा।

सब कुछ फिर ख़ामोशी में डूब गया। असद मियाँ छत की तरफ़ मुस्कुराती-सी

नज़रों से देख रहे थे। उनकी निगाहें जाने या अनजाने छत के उसी हिस्से पर टिकी थीं जहां पंखा लगाने का हुक था। बिजली की फिटिंग वहां तक बकायदगी से जाकर एकदम दो नंगे वायरों की आँखों से झाँकने लगी थी।

–तुम मेरा एक काम कर दो। उनकी आवाज़ और आँखों पहली बार मेरी ओर मुड़ी।

–जी।

–मेरी तबीयत ठीक नहीं है, और मैंने कल से इन्जेक्शन भी नहीं लिया है। कल दोपहर से। शायद उससे तबीयत कुछ बेहतर हो जाए। उनके स्वर में बला की मिन्नत थी–तीन इन्जेक्शन पैथिडीन के। मदन के यहाँ मिल जाएँगे।

मैंने धीरे से ठंडी साँस ली। असद मियाँ बिना पलकें झपकाए उन्हीं मिन्नत भरी नज़रों से मेरी ओर देख रहे थे। उसी समय हाथ में काले चमड़े का बैग थोमे, प्याज़ी रंग की साड़ी पहने सुहेला भाभी कमरे में दाख़िल हुईं।

–मुझे ज़रा बाहर जाना है। जैसे उन्होंने अपने–आपसे कहा–ये जमील कहाँ चला गया? फिर बिना किसी जवाब की प्रतीक्षा किए वह पर्दा उठाकर बाहर निकल गई।

असद मियाँ उसे तरह मेरी तरफ़ देख रहे थे।

सीढ़ियाँ उतरते–उतरते मैं न चाहते हुए जफ़र मियाँ के घर की ओर मुड़ गया। फ़लक मंज़िल के बाहरी हिस्से में ज़फ़र मियाँ और इसके पीछे उनकी छोटी बहन शाहिदा रहती थी। पिछले टुकड़े में सबसे बड़े भाई असद मियाँ का खानदान था। घूमकर मैं ज़फ़र मियाँ के कमरे में पहुँचा।

शहनाज़ आपा तन्नू को उसका ईद का जूता दिखा रही थीं।

–मामूँ आ गए। देखिए मामूँ, अब्बू हमारा नया जूता लाए। तन्नू बहुत खुश था।

–और बेटा, मामूँ को नहीं बताया कि तुमने शेर कैसे मारा था? और तुम्हारी बन्दूक़ कहाँ है?

ज़फ़र मियाँ बाहर के कमरे से अन्दर आ गए थे। तन्नू नक़ल करके बता रहा था कि झाड़ी में से 'हाऊँ' करता कैसे शेर निकला और कैसे उसने अपनी कॉर्क बाली बन्दूक से उसे ढेर कर दिया। फिर दीवान पर बिछी शेर की खाल की तरफ़ इशारा करके उसने ठेठ शिकारियों वाले लहज़े में कहा– उसी की खाल है। जफ़र मियाँ हँस–हँसकर लोटे जा रहे थे।

–भई खाना तैयार हो गया? रियाज़? का तो रोज़ा था, सूख गए होंगे। उन्होंने शहनाज़ आपा से कहा और दोनों बावर्चीख़ाने की तरफ़ चले गए।

तन्नू अपनी बन्दूक़ लटकाए शायद दादी माँ को शेर का शिकार सुनाने चला गया और मैं अकेला दीवान पर बैठा रह गया। कमरे के दो कोनों में रखे लैम्प्स के शेड्स में से रोशनी छन–छनकर अँधेरे में घुल रही थी और कुल मिलाकर ऐसा लग रहा था कि सूरज निकलने के थोड़े पहले या डूबने के बिल्कुल बाद का समय हो। बीच में महोगनी के सिरहाने की खूबसूरत दोहरी मसहरी थी जिसके लिए ऊपर छत में मच्छरदानी के स्टिंग्स लटक रहे थे। बाजू में दीवार से लगी हुई गहरे काले रंग की वार्डरोब्ज़ थी और उसके बाद लगभग कोने में लैम्प के पास ड्रेसिंग टेबिल। बिल्कुल वैसी ही जैसी असद मियाँ के घर में थी। इसमें पॉलिश की चमक अब भी बाकी थी। दूसरी तरफ़ जूते रखने का स्टैंड या जिसमें बहुत से ज़नाने और मर्दाने जूते रखे हुए थे। पलंग से अटेच्ड, सिरहाने एक छोटा–सा बुक–रैक था जिसमें क़ायदे से किताबें जमी हुई थीं। पूरे कमरे में ब्लड–रैड और ब्लैक के मिले–जुले पैटर्न का क़ालीन बिछा हुआ था।

नहीं। ज़फ़र मियाँ भूल नहीं सकते थे। फिर क्या जानकर वह असद मियाँ के ज़िक्र को टाल गए थे? पन्द्रह दिन पहले भी जब मैं गाँव से आया था, असद मियाँ की तबीयत ख़राब चल रही थी। बल्कि रमज़ान से पहले तो एक दिन उनकी हालत नाज़ुक हो गई थी। तब मैंने जफ़र मियाँ से कहा था– किसी डॉक्टर को दिखा दें?

–तुम भी यार कमाल करते हो! हर तीसरे दिन किस डॉक्टर को दिखाया जा सकता है? फिर कुछ बीमारी हो तब ना। सड़क पर कोई पहचानवाला मिल जाए तो टांग में चोट लगने से फ्रेक्चर तक ही कहानी उसे सुना देते हैं। दवा के पैसे माँग लेते हैं और जाकर वही पैथिडीन! किसी जान–पहचानवाले के यहाँ अगर मुर्गियाँ पली हैं तो जाकर कहेंगे बच्चों ने बहुत दिन से अंडे नहीं खाए हैं। जो कुछ मिल गया सिन्धी को बेच देंगे और फिर वही पैथिडीन! जीना हराम कर दिया है। इन्शोरेन्सवालों से जो कुछ मकान का किराया मिलता है, वह भी इन्हीं घपलों में उड़ाते हैं। ज़मील चोरी के अलावा अब सट्टे से भी शौक़ करने लगे हैं। इधर भाभी की हरकतें देखो! नसरीन भी उन्हीं के रास्ते पर जा रही है। पता नहीं किन–किन हरामज़ादों के साथ खुली हुई जीपों में घूमती–फिरती है। यही सब दोनों छोटी बेटियाँ भी करेंगी। वह तो बहुत ग़नीमत है कि सारा और समीना की शादियाँ हो गईं। मियाँ, हमने तो उधर फटकना भी छोड़ दिया। अम्मी की ज़िन्दगी तो हराम हो ही गई। तुम ख़ुद सुनते रहते हो, दुनिया की

कौन-सी ज़लालत बची है जो अब फ़लक मंज़िल के नाम से न जोड़ी जा सके! और फिर मेरी अपनी प्रॉब्लम्स हैं। आख़िर कब तक! ज़फ़र मियाँ के चेहरे पर ऐसा तास्सुर था जैसे उनके अनजाने ही मैंने उन्हें किसी भद्दे मज़ाक़ में घसीट लिया हो।

और असद मियाँ की माँ?

-बदनसीब है! माँ ने फूट-फूटकर रोते हुए कहा था-जिन्दगी और मौत दोनों की तरफ से बदनसीब! जैसे जिया है वैसे ही मरेगा! रमजान के मुबारक महीने में तो उस गुनाहगार को मौत तक नीसब नहीं हो सकती। और फिर, जैसे कुछ सोचकर, वह चुप हो गई थीं और बहुत देर तक कुछ भी नहीं बोली थीं।

मैं ज़फ़र मियाँ के कुछ कहे बग़ैर कमरे और फिर फ़ल्क़ मंज़िल के बाहर आ गया।

खुल सड़क पर हल्की-सी खुनकी का एहसास हो रहा था। बहुत आगे स्ट्रीट लैम्प जल रहा था और वहाँ तक घुप अँधेरा था। मेन रोड तक पहुँचने के लिए मुझे काफ़ी पैदल चलना था। पीछे से आते हुए स्कूटर की रोशनी और आवाज़ से सड़क पर छाया हुआ अँधेरा जैसे धड़का, फिर ख़ामोशी और अँधेरा एक-दूसरे में घुलकर दूर तक फैलते चले गए।

-जिन्दगी में लेन-देन के कुछ क़ानून शायद लिखे ही नहीं गए। यह भी क्या कि जो कुछ हमें तर्के-विर्से में मिल जाए, हम उसे अपना समझ, ज़रब देने के तरीक़े ढूँढ़ने लगें। ये न लिखे गए क़ानून उन लोगों के लिए हैं, जो सिर्फ़ उस चीज को छूते हैं जिस पर अपना हक़ तसलीम करते हों, जो उन्होंने दाव पर लगाकर वसूल की हो। बाकी सब तो ज़माने की तरफ़ से लादा गया बोझ है।-एक बार काफ़ी ज़्यादा शराब पीने के बाद मेरे सामने असद मियाँ ने लोगों से कहा था। उस रात जुए में वह कोई बीस हज़ार रूपये हारे थे। तब ज़फ़र मियाँ और शहनाज़ आपा की शादी को दो साल हुए थे और मैं अलीगढ़ से छुट्टियों में कुछ दिन के लिए शहनाज आपा के पास ठहरा हुआ था। मुझे पात नहीं क्यों असद मियाँ अच्छे लगते थे। मेरे उनसे ज़्यादा मेल-मिलाप को देखते हुए शहनाज़ आपा ने समझाया था कि मैं उनके पास न जाया करूँ, क्योंकि वहाँ लोग जुआ खेलने और शराब पीने के लिए इकट्ठे होते थे।

फिर धीरे-धीरे सब सामने आ गया था। असर मियाँ ने फ़लक मंज़िल तीन अलग-अलग पार्टियों को रहन रख दी थी-इन्शोरेन्स कम्पनी और कुछ दूसरे मालदार सेठों को। देखते-ही-देखते डिक्रियाँ आने लगी थीं और फ़लक मंज़िल के एक बड़े

हिस्से को फ्लैटों में तब्दील करके किराए पर उठा दिया गया था, उधार वालों की किस्तें चुकाने के लिए। असद मियाँ की माँ ने पहले काफ़ी बर्दाश्त किया क्योंकि असद मियाँ वैसे भी उनके सबसे लाड़ले बेटे थे। -नवाबों से ज़्यादा लाड़ से पाला है मैंने इसे, आँखों में आँसू भरकर वह कहा करती थीं। लेकिन फिर उन्होंनें इस बात को लेकर मुक़दमा दायर कर दिया था कि ज़ायदाद क्योंकि उनके नाम थी, इसलिए उनके जीते-जी उसे रहन रखने का हक़ असद मियाँ को नहीं था। हाइकोर्ट में मुक़दमा चल रहा था और उम्मीद थी कि असद मियाँ के हिस्से को छोड़कर ज़फ़र मियाँ और शाहिदा को उनका हक़ मिल जाएगा।

शाहिदा के ख़्याल से मेरे मुँह में कड़वाहट फैल गई। अलीगढ़ जाने से पहले मैं शाहिदा के बहुत करीब आ गया था और मेरी आने वाली जिन्दगी के ज़्यादातर प्लानों में मैंने शाहिदा को भी शामिल समझ लिया था।

-प्लान! जैसे मैंने खुद से ही कहा। दो साल की मेहनत के बावजूद मैं प्रि-मेडिकल में इतने मार्क्स नहीं ला पाया कि किसी मेडिकल कॉलिज में दाख़िला पा सकूँ। जब तीन साल बाद मैं मुस्तक़िल तौर पर पर शहर लौटा तो शाहिदा, घर में बच्चों को पढ़ाने वाले मास्टर साजिद से शादी कर चुकी थी। साजिद एक ग़रीब घर का लड़का था। और खानदान के उन तेज़ी से बिगड़ते हालात में शायद शाहिदा को वही एक सहारा नज़र आया था। बहरहाल, इस बात को भी अब पाँच साल हो चुके थे। शाहिदा और साजिद का एक बच्चा था और अब असद और ज़फ़र मियाँ की माँ भी अपनी बेटी और दामाद के साथ ही रहती थीं।

सड़क के अगले मोड़ का बल्ब भी किसी ने फोड़ दिया था। अँधेरा उसी तरह छाया हुआ था। सिर्फ पास की कोठी की हल्की-सी रोशनी नज़र आ रही थी और कुत्ते के भौंकने की आवाज! मेरे क़दम धीरे-धीरे उठते रहे।

सबसे ज़्यादा हैरत मुझे असद मियाँ के उस अन्दाज पर होती थी, जिसके साथ उन्होंने पिछले आठ सालों में हर स्टेज पर हालात को स्वीकार किया था। एक ख़ास लापरवाही और बेनियाज़जी उनके अन्दाज़ में थी। माँ से कोई बात मनवाने में नाकाम होने से लेकर जुए में कोई बड़ी रकम हारने और उसके बाद अब अपने एक ज़माने के यार-दोस्तों के, एक रुपए तक के इनकार को उन्होंने उसी नानकेलन्स के साथ क़बूल किया था। एक ज़माने में जो तास्सुर उनके चेहरे पर, खाने में कोई नापसन्द चीज़ देखकर होता था, आज वही किसी भी दोस्त या अजनबी की झिड़की, व्यंग्य या मज़ाक सुनने के बाद। ज़फ़र मियाँ ने हालात से लड़ने के लिए हाथ-पैर मारे थे। अब

उनके दोस्तों की महफ़िलें कम हो गई थीं, तफ़रीहें कम हो गई थीं, यहाँ तक कि कभी-कभी तो ब्यूक में पेट्रोल डलवाना भी मुश्किल हो जाता था। शहनाज़ आपा अच्छे कल की ख़्वाहिश में लॉट्रियों के टिकट ख़रीदती रहती थीं, लेकिन फिर भी उनकी बदहाली एक ख़ास स्टेज तक आकर रुक गई थी। शाहिदा भी एक हरी-भरी बेल की तरह अपने सबसे क़रीब की दीवार का सहारा लेने पर मजबूर हो गई थी। लेकिन असद मियाँ बिना किसी तब्दीली के, वक़्त के साथ-साथ नीचे बैठते गए थे। जैसे उनकी नज़रों में जो कुछ हो रहा था, सिर्फ वही हो सकता था। शहर के विभिन्न हिस्सों में न जाने कितने लोगों से उन्होंने झूठ बोलकर पैसे लिए थे। किसी को नायाब कारतूस लाके देने को, तो कसी को कोई और ज़रूरी चीज़ दिलाने के बहाने, किसी से बीमारी, किसी से भूख का बहाना, लेकिन किसी शर्म का तआस्सुर उनके चेहरे पर कभी नहीं रहा था। यहाँ तक कि पिछले दिनों तो वह पीर-फ़कीरों के मज़ारों पर बैठने लगे थे- नज़र और चढ़ावे मिल जाने की उम्मीद में। जमील चोरी करना सीख गया था, लेकिन उसके चोरी करने पर असद मियाँ ने कभी कोई एतराज़ नहीं किया था। सारा घर उनको भूलकर, उनकी तबीयत की तरफ से आंखे बन्द करके ईद की तैयारियों में लगा हुआ था। ज़फ़र मियाँ के यहाँ एक हफ्ते से घर की लिपाई-पुताई चल रही थी। शाहिदा और ज़फ़र मियाँ के यहाँ बच्चों के कपड़े सिए जा रहे थे। शीर-खुर्मे के लिए सूखे नारियल घिसे जा रहे थे, बादाम-पिस्ते काट-धोकर सुखाए जा रहे थे। गरज़ यह कि हर आदमी अपनी जगह मशगूल था और असद मियाँ जैसे उनके सबकी मजबूरी को समझते थे।

असद मियाँ को इन सब लोगों-बहन, भाई, माँ और दोस्तों के बीच देखकर पता नहीं क्यों मुझे हमेशा ऐसा लगता था, और जैसे सिर्फ एक असद मियाँ ही अपने मुक़ाम पर थे, और सारी दुनिया बदल गई थी।

फ़लक मंज़िल का बाहरी हिस्सा गहरे अँधेरे में डूबा हुआ था। कम्पाउंड-वॉल में जगह-जगह रख़ने पड़ गए थे और कई जगह आसानी के ख़्याल से लोगों ने दाख़िले के लिए दीवार तोड़ डाली थी। दाख़िले के दरवाज़े की जगह दोनों तरफ़ सिर्फ़ सीमेंट के पिलर्स रह गए थे। सामने पोर्च में ज़फ़र मियाँ की ब्यूक खड़ी हुई थी। दाईं तरफ़ शाहिदा और साजिद का हिस्सा था, जिसके बाहर एक साइकिल खड़ी हुई थी। इसके ऊपर और आगे दूर तक फ़लक मंज़िल का हिस्सा और ज़मीन किराए पर उठा दी गई थी। अपने वकील दोस्तों के मशवरे और मदद से ज़फर मियाँ ज़मीन का कुछ हिस्सा मार्टगेज से बचाने में कामयाब हो गए थे। इस हिस्से पर शहनाज़ आपा ने अपना ज़ेवर

गिरवी रखकर एक छोटा-सा फ्लैट बनवा दिया था, जिसमें किराए पर कोई मिलट्री के मेजर रहते थे। दाईं तरफ़ कम्पाउंड में घास-ही-घास थी, जो बीच में बने ख़ूबसूरत हौज़ और फ़व्वारे को जैसे निगल गई थी।

पोर्च से गुज़रकर घूमने के बाद फ़लक मंज़िल का वह हिस्सा था जहाँ असद मियाँ रहते थे। उनके कमरे की हल्की-हल्की रोशनी मुझे दूर से ही नज़र आ रही थी। दूर, सामने लगभग पचास फीट नीचे, लहरें मारता हुआ तालाब था। कमरे के बाहर लगे यूक्लिप्टस के नीचे खड़े होकर बरसात की ख़ामोश, तेज़ हवा की रातों में मैंने अक्सर पानी की लहरों और यूक्लिप्टस की पत्तियों की थरथराहट को सुना था। इस वक़्त दोनों चीजें चुप थीं।

सीढ़ियाँ चढ़ने से पहले एक लम्हें के लिए मैं रुका। दूर, दाईं तरफ़ दरख़्तों और जंगली घास में घिरी लकड़ी के अध-टूटे शेड्स नज़र आ रहे थे। उस हिस्से में जहाँ की छत गिर चुकी थी या टीन की छत उतारकर बेची जा चुकी थी, किसी ऊपरी कमरे की रोशनी एक आरा-मशीन पर पड़ रही थी जो नामालूम कैसे अपनी जगह लगी रह गई थी। ऐसा लग रहा था कि कोई झुकी कमर की शबीह पनाह ढूँढ़ने के लिए वहां जा छुपी हो या वहाँ से पनाह पाने के लिए सर उठाए खड़ी हो। मेरी आँखों में वर्कशॉप का पुराना नक़्शा घूम गया। असद मियाँ के बाप अपने ज़माने में सूबे के सबसे बड़े लकड़ी के व्यापारी और फ़र्नीचर डीलर थे। एक ही वक्त में कोई डेढ़ सौ कारीगर उनके शेड में काम किया करते थे।

दरवाज़ा खुला हुआ था। असद मियाँ की बेचैन निगाहें मुझ पर ठहर गईं। वह बिस्तर पर उठकर बैठ गए थे। एक पल के लिए वह कुछ सोचते से रहे फिर झपटकर उन्होंने इन्जेक्शन मेरे हाथ से ले लिये।

-लाएगा कौन?- मैंने थोड़ी हिम्मत करके पूछा।

जवाब में असद मियाँ मुस्कुराते हुए बिस्तर से उठे। खड़े होने की कोशिश में पहले तो वह डगमगाए फिर संभलकर नंगे पैर ही अन्दर के कमरे में चले गए। थोड़ी देर बाद वह सीरिंज हाथ में लिये वापस आए और देखते-ही-देखते वह तीनों इन्जेक्शन उन्हीं के हाथों, उनके खून में दाखिल हो गए। पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें उनके माथे पर जगमगाने लगी थीं और उनके मुँह से 'सी-सी' की आवाज़ निकल रही थी। थोड़ी देर आँखें बन्द किए, गर्दन अकड़ाए वह बिल्कुल ख़ामोश बैठे रहे, फिर जब उन्होंने आँखें खोलीं तो उनमें दर्द और तकलीफ़ का तआस्सुर ख़त्म हो चुका था।

मुझे एकदम लगा जैसे मैं किसी चीज़ का इन्तजार कर रहा हूँ। किसी ऐसी चीज़ का जो मैं चाहता था कि न हो लेकिन फिर भी जिसका इन्तज़ार था। असद मियाँ के अगले सवाल का। वह सवाल जो मुझे मालूम था। जो मैं चाहता था व न करे, लेकिन जो वह करने वाले थे।

–यार क्या किसी के पास तीन सौ बोर के कारतूस मिल सकते हैं? आबिद मियाँ को चाहिए। सुना है पीस–कोर में कोई आदमी बेच रहा है?

इसके बाद थोड़ी देर के लिए खामोशी रही। असद मियाँ अब बिस्तर पर लेटकर मेरी तरफ़ करवट ले चुके थे। मैंने जैसे पहली बार देखा कि असद मियाँ के सर पर बाल बहुत कम रह गए थे। उनके सर की खाल बालों में से तक़रीबन साफ़ नजर आने लगी थी। और फिर बालों का रंग–न सफ़दे न काला। बिल्कुल राख का–सा रंग हो गया था।

–और तुम्हारी खेती के क्या हाल हैं? मुझे लगा जैसे लहज़े में कुछ छिपा हुआ था, मज़ाक, तन्ज़ या कुछ और, लेकिन क्या मैं समझ नहीं पाया?

–ठीक है, ट्रैक्टर चल रहा है। मैंने ज़रूरतन जवाब दिया।

–मेरा मशवरा मानों तो यह है कि तुम अब भी संजीदगी के साथ पढ़ डालो। क्या रखा है इस तरह खेती–वेती में। आज तो बहन है, कल भानजे बड़े हो जाएँगे तो क्या करोगे? यह बस कुछ तुम्हारे बस का नहीं है। अभी तो सब ख़ुश हैं कि बहनोई की मौत के बाद भाई, बहन और भानजों के लिए कितना कर रहा है, लेकिन धीरे–धीरे सब बदल जाएगा... अरे हाँ! यह तो बताओ–क्या तुमने कभी किसी जिन को देखा है?

–जी? मुझे यक़ीन नहीं आया।

–जिन–मेरा मतलब जिन्नातों से है। लोग नमाज़ें–वज़ीफ़े पढ़कर जिनों को अपने क़ब्ज़े में कर लेते हैं। क्या कहते हैं उन्हें?–मवक्किल! मवक्किल जिसके क़ब्ज़े में हो उसकी हर ख़्वाहिश पूरी करता है। हर काम करता है। किसी भी तरह का। आज एक साहब कह रहे थे कि उन्होंने एक ज़माने में जिनों को देखने और क़ब्जे में करने के लिए बड़े जतन किए। वीरानों में जा–जाकर इबादतें कीं। उजाड़ और गैरआबाद मस्जिदों में अज़ाने दीं, लेकिन उन्हें कभी कोई जिन इन्सानी शक्ल में नज़र नहीं आ सका। हाँ, एक साँप के रूप में ज़रूर नज़र आया। कोई डेढ़ बालिश्त लम्बा, बहुत ही खूबसूरत लाल रंग का। वैसे खुदा मालूम उन्हें यह कैसे पता चला कि वह जिन ही था, कभी तुम्हारा दिल भी चाहता है जिनों को देखने के लिए?

–जी नहीं, मुझे झुरझुरी–सी आ रही थी।

–एक ज़माने में शहर में एक पहुँची हुई औरत थी। सुना है उनके क़ब्ज़े में मवक्किल था। जाहिर है वह उनकी हर ख़्वाहिश पूरी कर सकता था, लेकिन बेचारी मरी बहुत गरीबी में । क्या पता, कभी क़ब्ज़े में आए तो पता चले! और असद मियाँ हँसने लगे– तुम गाँव कब वापस जाओगे–उन्होंने पूछा।

–बासी ईद को या उसके अगले दिन।

–खेतों के लिए खाद का कोई इन्तज़ाम हुआ?

–अभी तक तो नहीं।

–ओह, हाँ...वो फ़र्टीलायज़र्स कारपोरेशन के शर्माजी मेरी पहचान के हैं, एकदम असद मियाँ मेरे चेहरे के बजाय कहीं और देखने लगे थे, जैसे उनकी आँखें मुझसे बचना चाह रही थीं– मैंने यूँ ही बताया। तुम चाहो तो मैं खाद दिलवा...और उन्होंने जुमला पूरा नहीं किया।

अब असद मियाँ छत की तरफ़ देखने लगे थे। फिर एक ठंडी साँस लेकर वह अड़ी थकी आवाज़ में बोले–बस, अब तुम जाओ। मैं बिल्कुल ठीक हूँ।

उनकी आँखें झिलमिला गईं।

सन्नाटे में लहरों की आवाज़ और यूक्लिप्टस की पत्तियों की थरथराहट शुरू हो गई थी।

सब लोग अपने–आपको जैसे उस हादसे के लिए तैयार चुके थे। कमरे में पूरी फ़लक मंज़िल जमा थी।

असद मियाँ के हलक़ से अजीब–सी आवाज़ें निकल रही थीं और उनका मुंह फटकर खुल गया था। गर्दन और माथे की रगें खिंचकर उभर आईं थीं और चेहरे पर नीलाहट दौड़ने लगी थी... बिल्कुल वैसी ही नीलाहट जैसे बर्फ में दबे गोश्त में पैदा हो जाती है। सुहेला भाभी उसी प्याज़ी साड़ी में उनका सर अपनी गोद में रखे बैठी थीं और उनके चेहरे पर एक अजीब–सी वीरानी घिर आई थी। उनकी खूबसूरत साड़ी में असद मियाँ का मैला चेहरा बड़ा बेमेल लग रहा था।

–यासीन शरीफ़ पढ़ो मियाँ! सैयदानी बुआ ने ज़फ़र मियाँ से कहा और ज़फंर मियाँ झपटकर भागे। कुछ ही लम्हें बाद वह पंचसूरा हाथ में लिये कमरे में लौटे। टोपी लगाने से उनके चेहरे पर एक अजीब से सीधेपन या बेवकूफ़ी का तआस्सुर पैदा हो

गया था। चश्में के पिछे उनकी आँखों में बेचैनी थी। असद मियाँ के सिरहाने बैठकर वह धीमी-धीमी आवाज में यासीन शुरू कर चुके थे- मौत की तकलीफ़ को कम करने के लिए। कहीं से किसी की हिचकियों की आवाज़ उभर रही थी। मैंने देखा- मियाँ की माँ अपना सर उनके पैरों में रखे रो रही थीं।

पल भर के लिए मानों सब कुछ रुक गया। असद मियाँ का जिस्म बेहरकत हो गया था-पर सुहेला भाभी की चीख़ से पहले ही असद मियाँ ने आँखें खोल दीं, फिर बड़े मासूमाना अन्दाज में उन्होंने अपने चारों तरफ़ इकट्ठी भीड़ पर नज़र डाली।

ज़फ़र मियाँ यासीन शरीफ़ पढ़ना बन्द कर चुके थे। सुहेला भाभी के चेहरे पर वही तंज़िया-सी मुस्कुराहट फिर खेलने लगी थी। वह एक चमचे से असद मियाँ के हलक़ में पानी टपका रही थीं। मैंने घड़ी की तरफ़ देखा। रात के साढ़े बारह बज चुके थे।

-कुछ बोलो बेटा? -कैसी तबीयत है?-क्या हो गया था? असद मियाँ की माँ कह रही थीं। उनकी आवाज़ ऐसी लग रही थी जैसे किसी ग्रामोफ़ोन रिकॉर्ड को कम स्पीड पर बजा दिया गया हो। आँखों से आँसू बहे जा रहे थे, जिन्हें वह दुपट्टे के पल्ले से पोंछ रही थीं। उनके एक ज़माने के नरम और नाज़ुक हाथों में दूर से ही नज़र आ जाने वाला खुरदरापन आ गया था।

ज़फ़र मियाँ खड़े हुए सर टोपी के ऐंगिल को लगातार बदल रहे थे। पंचसूरा अब भी उनके हाथ में दबा हुआ था। फिर सुहेला भाभी ने असद मियाँ का सर तकियों पर रख दिया। असद मियैँ की निगाहें चारों तरफ़ गर्दिश कर रही थीं। सब कुछ गहरी खामोशी में डूब गया था । सिर्फ असद मियाँ की माँ की सिसकियां थीं, जो धीरे-धीरे कम होती जा रही थीं।

असद मियाँ थोड़ी कोशिश के बाद तकियों के सहारे बैठ गए। उनके चेहरे की मुस्कुराहट हर पल गहरी होती जा रही थी। कमरे में कोई अपनी जगह से हिला तक नहीं। अचानक अपने कमजोर जिस्म के बावजूद असद मियाँ ने खनकती-सी आवाज में कहा-नहीं-नहीं, मैं बिल्कुल ठीक हूँ। घबराइए मत, कुछ नहीं होगा। कम-से कम रमजान की कल शाम तक तो नहीं, आप यकीन कीजिए। खुदा मालूम असद मियाँ किससे कह रहे थे, लेकिन उनकी उस मुस्कुराहट में मुझे लगा हजारों कहकहे घिर आए थे।

फिर धीरे-धीरे लोग असद मियाँ के कमरे से रुख़्सत होने लगे। थोड़ी देर बाद मैं अकेला वहां रह गया। सुहेला भाभी शायद अन्दर कपड़े बदल रही थीं और बच्चे सोने

के लिए लेट चुके थे। मैं खामोश बैठा जमीन पर बिछे कालीन को घूरता रहा। उसके डिजाइन, उसके रंग के बारे में सोचता रहा। थोड़ी देर में असद मियाँ को नींद आ गई और वह ख़र्राटे लेने लगे।

उठते वक्त मैं सोच रहा था कि उस रात असद मियाँ के कमरे से शायद हर आदमी मायूस होकर वापिस लौटा था।

अगली शाम साढ़े चार बजे मैं ज़फ़र मियाँ के कमरे में बैठा ईद की खरीदारी का बजट सोच रहा था। शहनाज आपा और जफर मियाँ आखिरी रोजे के इफ्तार पर कहीं इन्वाइटेड थे और तन्नू शाहिदा के यहाँ चला गया था। सबेरे मैं असद मियाँ को देखने गया था और खिड़की में से उन्हें कोई किताब पढ़ता देखकर वापस आ गया था। मैं लिस्ट बना ही रहा था कि जमील भागता हुआ कमरे में दाखिल हुआ।

-आपको अब्बू बुला रहे हैं। उनकी साँस फूल रही थी।

-अम्मी घर में हैं? मैंने पूछा।

-कोई भी नहीं है।

-तबीयत कैसी है उनकी?

-वैसी ही है। सीने में दर्द हो रहा है। आपको जल्दी से बुलाया है। जमील मेरे जवाब का इन्तजार कर रहा था।

-तुम चलो, मैं आ रहा हूँ। पैथिडीन के लिए बुलाया होगा, मैंने सोचा और पाँच रुपए का नोट मैंने अपने जेब में रख लिया।

असद मियाँ की हालत फिर रात जैसी हो रही थी। रंग नीला पड़ गया था, आँखों की पुतलियाँ फिर गई थीं और साँस बहुत तकलीफ से आ रही थी। एक दम पता नहीं क्यों मुझे डर-सा लगा, जैसे किसी सुनसान सड़क पर मैं अकेला खड़ा रह गया हूँ।

थोड़ी देर में लोग इकट्ठे होना शुरू हो गए और मैं भागता हुआ डॉक्टर को बुलाने के ख़्याल से बाहर आ गया। काफ़ी दौड़ने के बाद मुझे एक टैक्सी मिली। जब डॉक्टर के साथ टैक्सी फ़लक मंज़िल में दाख़िल हुई तो बहुत देर हो चुकी थी।

शाम के लम्बे साए ज़मीन पर फैलते जा रहे थे।

कमरे में एक तरफ सिसकियाँ-ही-सिसकियाँ सुनाई दे रही थीं।

असद मियाँ की आँखें खुली हुई, अजीब ढंग से कहीं देख रही थीं। कम रोशनी

में लग रहा था जैसे उन आँखों में मिला-जुला गुस्सा और मुस्कुराहट अब भी थी। सकते के आलम में, मैं उनके चेहरे को देखता रहा, फिर आगे बढ़कर उन खुली आँखों को बन्द कर दिया। डॉक्टर ने उनका जिस्म एक सफ़ेद चादर से ढक दिया।

एकदम किसी चीज़ ने मेरा ख़्याल असद मियाँ के मुर्दा चेहरे से अपनी तरफ़ खींच लिया। जैसे दरोदीवार हिल गए थे। कोई गोला फ़लक मंज़िल के बिल्कुल ऊपर आकर फूटा था।

...दो, तीन, चार...तोपें चल रही थीं, रोज़े के इफ्तार की...ईद के चाँद की। रमज़ान अब खत्म हो रहे थे।

मंज़ूर एहतेशाम

जन्म : 3 अप्रैल, 1948 भोपाल

प्रमुख कृतियाँ : सूखा बरगद, दास्ताने लापता, बशारत मंजिल (उपन्यास) रमजान में मौत (कहानी संग्रह)

पिता

–धीरेन्द्र अस्थाना

'अपन का क्या है/अपन उड़ जाएँगे अर्चना/धरती को धता बताकर/अपन तो राह लेंगे /पीछे छूट जाएगी/घृणा से भरी और संवेदना से खाली/इस संसार की कहानी'– एयर इण्डिया के सभागार में पिन ड्राप साइलेन्स के बीच राहुल बजाज की कविता की पंक्तियाँ एक ऐन्द्रजालिक सम्मोहन उपस्थित किये दे रही थीं। अब किसी सभागार में राहुल बजाज की कविता का पाठ शहर के लिए एक दुर्लभ घटना जैसा होता था। प्रबुद्ध जन दूर-दूर के उपनगरों से लोकल, ऑटो, बस टैक्सी या अपनी निजी कार से इस क्षण का गवाह बनने के लिए सहर्ष उपस्थित होते थे। राहुल शहर का मान था। साहित्य के जितने भी भारतीय अवार्ड थे, वे सब के सब राहुल के घर में एक गर्वीले ठाठ के साथ शोभायमान थे। दुनिया-भर की प्रसिद्ध किताबों से उसकी स्टडी अँटी पड़ी थी। अखबार, पत्रिकाओं और टीवी चैनल वाले जब-तब उसका इण्टरव्यू लेने के लिए उसके घर की सीढ़ियाँ चढ़ते-उतरते रहते थे। उसके मोबाइल फोन में प्रदेश के सीएम, होम मिनिस्टर, गवर्नर, कल्चरल सेक्रेटरी, पुलिस कमिश्नर, पेज थ्री की सेलिब्रिटिज और बड़े पत्रकारों के पर्सनल नम्बर सेव थे।

वह यूनिवर्सिटियों में पढ़ाया जा रहा था। असम, दार्जिलिंग, शिमला, नैनीताल, देहरादून, इलाहाबाद, लखनऊ ,भोपाल, चण्डीगढ़, जोधपुर, जयपुर, पटना और नागपुर में बुलवाया जा रहा था। मुम्बई जैसी मायावी नगर में वह टू बेडरूम हॉल के एक सुविधा और सुरुचिसम्पन्न फ्लैट में जीवन बसर कर रहा था। वह मारुति जेन में चलता था। रेमण्ड तथा ब्लैक बेरी की पैण्टें, पार्क एवेन्यू और वेनह्यूजन की शर्टें और रेड टेप

के जूते पहनता था। विगत में घटा जो कुछ भी बुरा, बदरंग और कसैला था, उन सबको झाड़-पोंछकर नष्ट कर चुका था। लेकिन चीजें इस तरह नष्ट होती हैं क्या! 'अतीत कभी दौड़ता है, हमसे आगे/भविष्य की तरह/कभी पीछे भूत की तरह लग जाता है/ हम उल्टे लटके हैं आग के अलाव पर/ आग ही आग है नसों के बिलकुल करीब/ और उनमें बारूद भरा है/' यह उसके बचपन का एक बहुत खास दोस्त बन्धु था जो कॉलेज पहुँचने तक कविताएँ लिखने लगा था। और नक्सली गतिविधियों के मुहाने पर खड़ा रहता था। वह बारूद की तरह फटता इससे पहले ही देहरादून की वादियों में कुछ अज्ञात लोगों द्वारा निर्ममतापूर्वक मार दिया गया।

राहुल डर गया। इसलिए नहीं कि उसने पहली बार मौत को इतने करीब से देखा था। इसलिए कि चौबीस बरस का बन्धु बीस साल के राहुल के जीवन की पाठशाला बना हुआ था। यह पाठशाला उजड़ गयी थी। उसने गर्दन उठाकर देखा, शहर के तमाम रास्ते निर्जन और डरावने लग रहे थे। एक खूबसूरत शहर में कुछ अभिशप्त प्रेतों ने डेरा डाल दिया था। वह एकदम अकेला था और निहत्था भी। कुछ कच्ची अधपकी कविताएँ, थोड़े-बहुत विद्रोही किस्म के विचार, कुछ मौलिक और पवित्र तरह के सपने, एक इण्टरमीडिएट पास का सर्टिफिकेट, अहंकारी, तानाशाह, सर्वज्ञ और गीता इलैक्ट्रिकल्स के मालिक पिता के एकाधिकारवादी साये के नीचे बिता रहा जीवन। यह सब कुछ इतना थोड़ा और आतताई किस्म का था कि राहुल डगमगा गया। उस रात वह देर तक पीता रहा और आधी रात को घर लौटा। पीता वह पहले भी था लेकिन तब वह बन्धु के साथ उसके घर चला जाता था।

राहुल को याद है, एकदम साफ-साफ। पिता ने उसे पर्दे की रॉड से मारा था। वह पिटते-पिटते आँगन में आ गया था और हैण्डपम्प से टकराकर गिर पड़ा था। पम्प और हत्थे को जोड़नेवाली मोटी-लम्बी कील उसके पेट को चीरती गुजर गयी थी। पेट पर दायीं ओर बना छह इंच का यह काला निशान रोज सुबह नहाते समय उसे पिता की याद दिलाता है। सिद्धार्थ अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर एक रात से गायब हुआ था और गौतम बुद्ध कहलाया था। राहुल अपने पिता, अपनी माँ और कमरे की खिड़की से झांकते अपने तीन भाई बहनों की भयाक्रान्त आँखों को ताकते हुए, खून से लथपथ उसी हैण्डपम्प पर चढ़कर आँगन की छत के उस पार कूद गया था। उस पार एक आग की नदी थी और तैर के जाना था। पीछे शायद माँ पछाड़ खाकर गिरी थी।

मेरे पास गाड़ी है, बँगला है, नौकर हैं। तुम्हारे पास क्या है? अमिताभ बच्चन ने दर्प में ऐंठते हुए पूछा है। शशि कपूर शान्त हैं। ममत्व की गर्माहट में सिंकता हुआ।

उसने एक गहरे अभिमान में भरकर कहा-मेरे पास माँ है। अमिताभ का दर्प दरक रहा है।

राहुल को समझ नहीं आता। उसके पास माँ क्यों नहीं है? राहुल को यह भी समझ नहीं आता कि क्यों दुनिया का कोई बेटा घमण्ड में भरकर यह नहीं कहता कि मेरे पास बाप है। बाप और बेटे अकसर द्वन्द्व की एक अदृश्य डोर पर क्यों खड़े रहते हैं?

'अब जबकि उँगलियों से फिसल रहा है जीवन/और शरीर शिथिल पड़ रहा है/ आओ अपन प्रेम करें वैशाली।' एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय के कॉन्फ्रेंस रूम में राहुल बजाज की कविता गूँज रही है। कविता खत्म होते ही वह ऑटोग्राफ माँगती नवयौवनाओं से घिर गया है।

वह कुमाऊँ विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग का सभागार था। उसके एकल काव्यपाठ के बाद विभागाध्यक्ष ने अपनी सबसे मेधावी छात्रा को नैनीताल घुमाने के लिए उसके साथ कर दिया था। इस छात्रा के साथ राहुल का छोटा-मोटा भावात्मक और बौद्धिक पत्र-व्यवहार पहले से था। वह पत्रिकाओं में राहुल की कविताएँ पढ़कर उसे खत लिखा करती थी। बीस-साल पहले माल रोड की उस ठण्डी सड़क पर केतकी बिष्ट नाम की उस एम.ए. हिन्दी की छात्रा ने सहसा राहुल का हाथ पकड़कर पूछा था-''मुझसे शादी करोगे?''

राहुल अवाक्। हलक भीतर तक सूखी हुई। अक्तूबर की उस पहाड़ी ठण्ड में माथे पर चली आयी पसीने की चन्द बूँदें। आँखों में अचरज का समन्दर। एक युवा, प्रतिभाशाली, तेज-तर्रार कवि के रूप में राहुल को तब तक मान्यता मिल चुकी थी। वह दिल्ली के एक साप्ताहिक अखबार में नौकरी कर रहा था। लेकिन शादी के लिए इतना काफी था क्या? फिर वह लड़की के बारे में ज्यादा कुछ जानता नहीं था। सिवा इसके लिए वह कुछ-कुछ रिबेलियन किस्म के विचारों से खदबदाती रहती थी, कि जीवन की चुनौतियाँ उसे जीने की लालसा से भरती थीं। उसकी आँखें गजब के आत्मविश्वास से दमक रही थीं।

आत्मविश्वास की इस डगर पर चलता हुआ क्या मैं अपने स्वप्नों को पैरों पर खड़ा कर सकूँगा। राहुल ने सोचा और केतकी की आँखों में झाँका। 'हाँ!' केतकी ने कहा और मुस्कुराने लगी। 'हाँ!' राहुल ने कहा और केतकी का माथा चूम लिया। आसपास चलती भीड़ आश्चर्य से ठहरने लगी। बीस बरस पहले यह अचरज की ही बात थी।

खासकर नैनीताल जैसे छोटे शहर में। विष्ट साहब की बेटी...हवाओं में हरकारे दौड़ पड़े।

लेकिन अगली सुबह नैनिताल कोर्ट में बिष्ट दम्पती तथा विभागाध्यक्ष की गवाही में राहुल और केतकी पति-पत्नी बन गये। उसी शाम राहुल और केतकी दिल्ली लौट आये-सरोजिनी नगर के एक छोटे से किराये के कमरे में अपना जीवन शुरू करने। एस.एन.डी.टी. के सभागार में ऑटोग्राफ सेशन से निपटने के बाद एक कुर्सी पर बैठे राहुल को अपना विगत अपने से आगे दौड़ता नजर आता है।

राहुल अँधेरी स्टेशन की सीढ़ियाँ उतर रहा था। विकास सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। उसकी उँगिलयों में सिगरेट दबी थी। राहुल ने विकास की कलाई थाम ली। सिगरेट जमीन पर गिर पड़ी। राहुल विकास को घसीटता हुआ स्टेशन के बाहर ले आया। एक सुरक्षित से लगते कोने पर पहुँचकर उसने विकास की कलाई छोड़ दी और हाँफते हुए बोला, ''मैंने तुमसे कहा था, जीवन का पहला पैग और पहली सिगरेट तुम मेरे साथ पीना। कहा था न?'' ''ज्जी!'' विकास की घिघ्घी बँधी हुई थी। ''तो फिर?'' राहुल ने पूछा। विकास ने गर्दन झुका ली और धीरे से कहा, ''सॉरी पापा! अब ऐसा न होगा।'' राहुल मुस्कुराया। बोला, ''दोस्त जैसा बाप मिला है। कद्र करना सीखो।'' फिर दोनों अपने-अपने रास्तों पर चले गये।

विकास मुम्बई के जे जे कॉलेज ऑफ आर्ट्स में प्रथम वर्ष का छात्र था। केतकी उसे डॉक्टर बनाना चाहती थी लेकिन विकास के कलात्मक रुझान को देख राहुल ने उसे हाई स्कूल साइन्स के बाद इण्टर आर्ट्स से करने और उसके बाद जे जे में एडमिशन लेने की स्वीकृति दे दी थी। वह कमर्शियल आर्टिस्ट बनना चाहता था। राहुल उन दिनों एक दैनिक अखबार का न्यूज एडीटर था। आधी रात को आना और सुबह देर तक सोते रहना उसकी दिनचर्या थी।

इतवार की एक सुबह उसने केतकी से पूछा,''विकास नहीं दिख रहा।''

''बेटे की सुध आयी?'' केतकी व्यंग्य की डोर थामे उस पार खड़ी थी।

''लेकिन घर तो शुरू से ही तुम्हारा ही रहा है।'' राहुल ने सहजता से जवाब दिया। ''यह घर नहीं है।'' केतकी तिक्त थी। उसे बहुत जमाने के बाद संवादों की दुनिया में उपस्थित होने का मौका मिला था-''गेस्ट हाउस है। और मैं हाउस कीपर हूँ। सिर्फ हाउस कीपर।''

राहुल उलझने के मूड में नहीं था। सी ई ओ ने उसे पुणे एडीशन की रूपरेखा

बनाने की जिम्मेदारी सौंपी थी। दोपहर के भोज के बाद अपनी स्टडी में बन्द होकर वह होमवर्क कर लेना चाहता था। उसने विकास का मोबाइल लगाया।

''पापा...।'' उधर विकास था।

''बेटे कहाँ हो तुम?'' राहुल थोड़ा तुर्श था।

''पापा, बान्द्रा के रासबेरी में मेरा शो है अगले मण्डे। इसलिए एक हफ्ते से अपने दोस्त कपिल के घर पर हूँ। रिहर्सल चल रही है।''

''रिहर्सल? कैसा शो?''

''पापा, आपको अपने सिवा कुछ याद भी रहता है? पिछले महीने मैंने आपको बताया नहीं था कि मैंने एक रॉक बैण्ड ज्वाइन किया है।''

''रिहर्सल घर पर भी हो सकती है।'' राहुल उत्तेजित होने लगा था, टिपिकल पिताओं की तरह।

''पापा, आप यह भी भूल गये?'' विकास की आवाज में व्यंग्य तैरने लगा था-''अभी कुछ दिन पहले जब मैं रात को प्रैटिक्स कर रहा था तब आपने घर आते ही मुझे कितनी बुरी तरह डाँट दिया था कि यह घर है, नाचने-गाने का अड्डा नहीं।''

''शटअप!'' राहुल ने मोबाइल ऑफ कर दिया। उसने देखा, केतकी उसे व्यंग्य से ताक रही थी। उसके सिर झुका लिया। वह धीमे कदमों से अपनी स्टडी में जा रहा था। पीछे-पीछे केतकी भी आ रही थी।

''क्या है?'' राहुल ने पूछा और पाया कि उसकी आवाज में एक अजीब किस्म की टूटन जैसी है। इस टूटन में किसी शोध में असफल हो जाने का दर्द समाया हुआ था।

''तुम हार गये राहुल!'' केतकी की आँख में बरसों पुराना आत्मविश्वास था।

''तुम भी ऐसा ही सोचती हो केतकी?'' राहुल ने अपनी कमीज और बनियान उलट दी-''क्या तुम चाहती थीं कि पेट पर पड़े ऐसे ही किसी निशान को देखकर विकास को अपने बाप की याद आया करती?''

''नहीं''

''तो फिर?'' राहुल की आवाज में दर्द था-''मैंने विकास को एक लोकतान्त्रिक माहौल देने का प्रयास किया था। मैं चाहता था कि वह मुझे अपना बाप नहीं, दोस्त समझे।''

''बाप दोस्त नहीं हो सकता राहुल! वह दोस्तों की तरह बिहेव भले ही कर ले, लेकिन होता वह बाप ही है। और उसे बाप होना भी चाहिए।'' केतकी ने झटके से अपना वाक्य पूरा किया और स्टडी से बाहर चली गयी।

राहुल आराम कुर्सी पर ढह गया। अगली सुबह जब वह बहुत देर तक नहीं उठा तो केतकी ने अपने फैमिली डॉक्टर को तलब किया। डॉक्टर ने बताया–''इनके जीवन में हाई ब्लड प्रेशर ने सेंध लगा दी है।''

राहुल की आँखें आश्चर्य से भारी हो गयीं। वह सिगरेट नहीं पीता था। शराब कभी–कभी छूता था। तला हुआ और तैलीय भोजन नहीं खाता था। घर से बाहर का पानी तक नहीं पीता था।

''तो फिर?'' उसने केतकी से पूछा।

लेकिन तब तक डॉक्टर की बताई दवाइयाँ लेने के लिए केतकी बाजार जा चुकी थी।

ग्यारह सितम्बर दो हजार एक को अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर पर हुए विनाशक हमले के ठीक एक हफ्ते बाद राहुल बजाज को रात ग्यारह बजे उसके बेटे विकास ने मोबाइल पर याद किया। राहुल उन दिनों एक टीवी चैनल में इनपुट एडीटर था और पत्नी के साथ दिल्ली में रहता था। चैनल की नौकरी में विकास तो विकास, केतकी तक राहुल को कभी–कभी किसी भूली हुई याद की तरह उभरती नजर आती थी। वह विकास को अपने मुम्बई वाले बसे–बसाये घर में अकेला छोड़ आया था। विकास तब तक एक मल्टीनेशनल कम्पनी के मुम्बई ऑफिस में विजुलाइजर के तौर पर नौकरी करने लगा था। आमतौर पर विकास का मोबाइल 'नॉट रीचेबल' ही होता था। पन्द्रह–बीस दिनों में कभी उसे माँ की याद आती तो वह दिल्ली के लैण्डलाइन पर फोन कर माँ से बतियाता था। केतकी के जरिये ही राहुल को पता चलता कि विकास मजे में है। उसकी नौकरी ठीक है और वह एक उभरता हुआ रॉक गायक भी बन गया है। वह माँ को बताता था कि मकान का मेण्टिनेन्स समय पर किया जा रहा है, कि लैण्ड लाइन फोन का बिल और बिजली का बिल भी समय पर दिया जा रहा है। सोसायटी के लोग उन्हें याद करते हैं और उसने अपने एक दोस्त से किस्तों पर एक सेकिण्ड हैण्ड मोटर साइकिल खरीद ली है। वह बताता कि मुम्बई की लोकल में भीड़ अब जानलेवा हो गयी है। अब तो किसी भी समय चढ़ना–उतरना मुश्किल हो गया है। एक खाते–पीते मध्यवर्गीय परिवार के लक्षण यहाँ भी थे। वहां भी। राहुल की

जिन्दगी बीत रही थी। केतकी की भी। व्यस्त रहने के लिए केतकी दिल्ली में कुछ ट्यूशन करने लगी थी।

इसीलिए विकास के फोन ने राहुल को विचलित कर दिया।

''बापू...'' विकास लाड़, शराब और स्वतन्त्रता के नशे में था–''बापू, वर्ल्ड ट्रेड सेण्टर की बिल्डिंग में हमारा भी हेड ऑफिस था। सब खल्लास हो गया। ऑफिस भी, मालिक भी। मालकिन ने ई–मेल भेजकर मुम्बई ऑफिस को बन्द कर दिया है।''

''अब?'' राहुल ने संयत रहने की कोशिश की–''अब क्या करेगा?''

''करेगा क्या स्ट्रग्ल करेगा। अभी तो एक महीने नोटिस की पगार है अपने पास। उसके बाद देखा जाएगा।'' विकास आश्वस्त लग रहा था।

''ऐसा कर, तू घर में ताला लगाकर दिल्ली आ जा। मैं तुझे अपने चैनल में फिट करवा दूँगा।'' राहुल की हमेशा व्यस्त और व्यावसायिक आवाज में बहुत दिनों के बाद एक चिन्तातुर पिता लौटा।

''क्या पापा...'' विकास शायद चिढ़ गया था–''आप भी कभी–कभी कैसी बातें करते हैं। मेरा कैरियर, मेरे दोस्त, मेरा शौक, मेरा पैशन सब कुछ यहाँ है...यह सब छोड़कर मैं वहां आ जाऊँ, उस गाँव में जहाँ लोग रात को आठ बजे सो जाते हैं। जहाँ बिजली कभी–क भी आती है। ओह शिट...आई हेट दैट सिटी।'' विकास बहकने लगा था–''मम्मी मुझे बताती रहती हैं वहां की मुसीबतों के बारे में। अपुन इधरीच रहेगा। आई लव मुम्बई, यू नो। अगले महिने में अपना बैण्ड लेकर पूना जा रहा हूँ शो करने।''

''जैसी तेरी मर्जी!'' राहुल ने समर्पण कर दिया!–''कोई प्राब्लम आये तो बता जरूर देना।''

''शाब्बाश! ये हुई न मर्दोंवाली बात।'' विकास ने ठहाका लगाया फिर बोला, ''टेक केयर...बाय।''

राहुल का जी उचट गया। उसने खुद को सान्त्वना देने की कोशिश की। आखिर सबकुछ तो है मुम्बई वाले घर में। टी.वी., फ्रिज, कम्प्यूटर,वीसीडी प्लेयर, वाशिंग मशीन, गैस, डबल बेड, वार्डरोब, सोफा, बिस्तर। इतना सक्षम तो है ही अपना बेटा कि दो वक्त की रोटी जुटा ले। उसने निश्चिन्त होने की कोशिश की लेकिन कुछ था जो उसके सुकून में सेंध लगा रहा था। थोड़ी देर बाद वह घर लौट आया। लौटते वक्त

उसने मोबाइल पर अपनी सोसायटी के सेक्रेटरी से रिक्वेस्ट किया कि कभी मेण्टिनेन्स मिलने में देर हो जाए तो वह मिसकॉल दे। पैसा सोसायटी के अकाउण्ट में ट्रान्सफर हो जाएगा। फिर उसने सेक्रेटरी से आग्रह किया कि विकास का ध्यान रखना। सेक्रेटरी सिख था। खुशमिजाज था। बोला, ''तुसी फिक्र न करो। असि हैं न। वैसे त्वाडा मुण्डा बड़ा मस्त है। कदी-कदी दिखता है बाइक पर तो बाय अंकल बोलता है।''

राहुल को घर आया देख केतकी विस्मित रह गयी। अभी तो सिर्फ पौने बारह बजे थे। राहुल कभी भी दो बजे से पहले नहीं आता था।

''विकास का फोन था।'' राहुल ने बताया-''उसकी नौकरी चली गयी है लेकिन यह कोई चिन्ता की बात नहीं है।''

''तो?'' केतकी कुछ समझी नहीं।

''उसने शराब पी रखी थी।'' राहुल ने सिर झुका लिया। उसकी आवाज दूसरी शताब्दी के उस पार से आती हुई लग रही थी। राख में सनी, मटमैली और अशक्त केतकी के भीतर बुझते अंगारों में से कोई एक अंगार सुलग उठा। राहुल की आवाज ने उसे हवा दी शायद।

''जब हम दिल्ली आ रहे थे, मैंने तभी कहा था कि विकास की मुम्बई में अकेला मत छोड़ो।''

''केतकी, मूर्खों जैसी बात मत करो। बच्चे जवान होकर लन्दन, अमेरिका, जर्मनी और जापान तक जाते हैं। नौकरियाँ भी आती-जाती रहती हैं। फिर हम अभी जीवित हैं!'' राहुल सोफे पर बैठ गया और जूते उतारने लगा-''उसका नशे में होना भी कोई धमाका नहीं है। ऑफ्टर ऑल, बाईस साल का यंग चैप है।''

''तो फिर?'' केतकी पूछ रही थी-''तुम परेशान किस बात को लेकर हो?''

''परेशान कहाँ हूं?'' राहुल झूठ बोल गया-''एक प्रतिकूल स्थिति है जो फिलहाल विकास को फेस करनी है। टैलेण्टेड लड़का है। दूसरी नौकरी मिल जाएगी। इस उम्र में स्ट्रगल नहीं करेगा तो कब करेगा? उसे अपने खुद के अनुभवों और यथार्थ के साथ बड़ा होने दो।''

''तुम जानो।'' केतकी ने गहरी निःश्वास ली-''कहीं तुम्हारे विश्वास तुम्हें छल न लें।''

''डोण्ट वरी। मैं हूँ न!'' राहुल मुस्कुराया। फिर वे सोने के लिए बेडरूम में चले

गये। रात का खाना राहुल दफ्तर में ही खाया करता था। उस रात राहुल ने सिर्फ दो काम किये। दायें से बायें करवट ली और बायें से दायें।

सुबह हमेशा की तरह व्यस्तता-भरी थी। अखबार, फोन, खबरें, न्यूज चैनल, इण्टरव्यू, प्रशासनिक समस्याएँ, कण्ट्रोवर्सी, मार्केटिंग स्ट्रेटजी, ब्यूरो कोऑर्डिनेशन, आदेश, निर्देश, टार्गेट...। एक निरन्तर हाहाकार था जो चौबीस घण्टे अनवरत उपस्थित था। इस हाहाकार में समय हवा की तरह उड़ता था और संवदेनाएं मोम की तरह पिघलती थीं। इन्हीं व्यस्तताओं में दिल्ली का दिसम्बर आया। ठण्ड, कोहरे और बारिश में ठिठुरता। विकास से कोई सम्पर्क नहीं हो पा रहा था। घर का फोन बजता रहता। घर में कोई स्पेशल डिश बनती तो उसका दिल हूम हूम करता। पता नहीं विकास ने क्या खाया होगा! खाना हलक से नीचे उतरने से इनकार कर देता। केतकी कुमार गन्धर्व और भीमसेन जोशी की शरण लेती। विकास का मोबाइल ट्राई करती। सोसायटी की सेक्रेटरी की पत्नी से फोन पर पूछती-''विकास का क्या हाल है?'' एक ही जवाब मिलता-''दिखा नहीं जी बड्डे दिनों से। मैं इनसे पूछ के फोन करूंगी।'' पर उसका फोन नहीं आता। केतकी अपनी कातर निगाहें राहुल की तरफ उठाती तो वह गहरी निस्संगता से जवाब देता-''नो न्यूज इज द गुड न्यूज।''

''कैसे बाप हो?'' आखिर एक रात केतकी ढह गयी-''तीन महीने से बेटे का अता-पता नहीं है और बाप मजे में है।''

''केतकी!'' राहुल ने केतकी को उसके मर्मस्थल पर लपक लिया, ''मैं बीस साल की उम्र में अपना घर छोड़कर भागा था। देहरादून से। फिर तुमसे शादी की। स्ट्रगल किया, अपना एक मुकाम बनाया। बेशक तुम साथ-साथ रही थी। हम देहरादून से दिल्ली, दिल्ली से लखनऊ, लखनऊ से गुवाहाटी और गुवाहाटी से मुम्बई पहुँचे। और अब फिर दिल्ली में हैं। क्या तुम्हें एक बार भी याद नहीं आया कि मेरा भी एक पिता था। मैं भी एक बेटा था?''

''लेकिन इस मामले में मैं कहाँ से आती हूँ राहुल?'' केतकी ने प्रतिवाद किया-''वह तुम्हारा और तुम्हारे पिता का मामला था। लेकिन यहाँ में इन्वॉल्व हूँ। मैं विकास की माँ हूँ। मेरे दिल में हर समय साँय-साँय होती है। सोचती हूँ कि कुछ दिनों के लिए मुम्बई हो आती हूँ।''

''ठीक है।'' राहुल गम्भीर हो गया-''मैं कुछ करता हूँ।''

नये वर्ष के पहले दिन दोपहर बारह पैंतीस की फ्लाइट से राहुल मुम्बई के लिए

उड़ गया। उसके ब्रीफकेस में घर की चाबियाँ और पर्स में तीन बैंकों के डेबिट तथा क्रेडिट कार्ड थे।

घर विस्मयकारी तरीके से बदरंग, उदास, अराजक और उजाड़ था। राहुल का घर, जिसे वह बतौर अमानत विकास को सौंप गया था। दरवाजे के बाहर लगी नेमप्लेट जरूर राहुल के ही नाम की थी, लेकिन भीतर मानो एक अपाहिज पहरेदार की छायाएँ डोल रही थीं।

धीरे-धीरे राहुल को डर लगना शुरू हुआ-''मैं उधर से बन रहा हूँ, इधर से ढह रहा हूँ।'' राहुल ने सोचा। इक्कीसवीं सदी का अँधेरा उसके जिस्म में भविष्य की तरह ठहर जाने पर आमदा था। उसके विश्वास, उसके मूल्य, उसकी समझ जिस पर देश का पढ़ा-लिखा तबका यकीन करता था, उसके अपने घर में विकास के मैले-कुचैले कपड़ों की तरह जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े थे। हॉल में बने बुक शेल्फ में मकड़ी के जाले लगे हुए थे और उनमें छिपकलियाँ आराम कर रही थीं। उसने फोन का रिसीवर उठाकर देखा-वह मृतकों की दुनिया में शामिल था। यानी घण्टी एक्सचेंज में बजा करती होगी। नागार्जुन, निराला और मुक्तिबोध की रचनावलियों के साथ कालिदास ग्रन्थावली जैसी दुर्लभ और बेशकीमती पुस्तकें सदियों पुरानी घूल के नीचे हाँफ रही थीं। सोफे के ऊपर एक इलेक्ट्रोनिक गिटार औंधा पड़ा था। टीवी के ऊपर एक नहीं तीन-तीन ऐश-ट्रे थीं, जिनमें चुटकी-भर राख झाड़ने की भी जगह नहीं थी। शोकेस के किनारे कोने में सिगरेट के खाली पैकेट पड़े थे। फर्श पर चलते हुए धूल पर जूतों के निशान छप रहे थे।

राहुल भीतर घुसा-एक साबुत आशंका के साथ। किचन के प्लेटफार्म पर बिसलरी के बीस लीटर वाले कई कैन कतार से लगे थे-खाली, बिना ढक्कन। वाशिंग मशीन का मुँह खुला था और उसमें गरदन तक विकास के गन्दे कपड़े ठूँसे हुए थे। पर्दों पर तेल और मसालों के दाग थे। बाथरूम और लैट्रीन के दरवाजों पर कुछ विदेशी गायकों के अहमकों जैसी मुद्रावाले पोस्टर चिपके थे। राहुल का स्टडीरूम बन्द था। बेडरूम में रखा कम्प्यूटर और प्रिण्टर नदारद था। राहुल ने चाबी से स्टडी का दरवाजा खोला-वहाँ धूल, उमस और सीलन जरूर थी लेकिन बन्द होने की वजह से बाकी कमरा जस का तस था-जैसा राहुल उसे छोड़ गया था। थका हुआ, प्रतीक्षातुर और उदास यह कमरा मानो राहुल को यह सान्त्वना दे रहा था कि अभी सबकुछ समाप्त नहीं हुआ है। अपनी राइटिंग टेबल के सामने पड़ी रिवाल्विंग चेयर पर बैठकर राहुल ने विकास का मोबाइल लगाने की एक व्यर्थ-सी कोशिश की लेकिन आश्चर्य कि घण्टी बज गयी।

''हैलो...'' यह विकास था, हूबहू राहुल जैसी आवाज में। तीन महीने से अदृश्य।

''कहां हैं?'' विकास चीखा-''कैसे हो , मॉम कैसी है?''

''तुझसे मतलब?'' राहुल चिढ़ गया।

''पापा, मेरा मोबाइल बन्द था, परसों ही चालू हुआ है। मैं आपको बताने ही वाला था। गुड न्यूज! परसों ही मेरी नौकरी लगी है-रिलायन्स इन्फोकॉम में। पगार है पन्द्रह हजार रुपये। तीन महीने से खाली भटकते-भटकते मैं पागल हो गया था। बीच में मेरा एक्सीडेण्ट भी हो गया था। मैं पन्द्रह दिन अस्पताल में पड़ा रहा। बाइक भी टूट गयी। भंगार में बेच दी।'' विकास बताता जा रहा था बिना रुके, बिना किसी दुख, तकलीफ या पछतावे के। खालिस खबरों की तरह।

''तूने एक्सीडेण्ट की भी सूचना नहीं दी?'' राहुल को सहसा एक अनाम दुःख ने पकड़ लिया।

''उससे क्या होता?'' विकास तर्क दे रहा था-''आपका ब्लडप्रेशर बढ़ जाता। आपलोग भागे-भागे यहाँ आते। ठीक तो मुझे दवाइयाँ ही करतीं न!'' फिर दोस्त लोग थे न। किस काम आते साले हरामखोर! आप देखते तो डर जाते पापा! बायीं आँख की तों वाट लग गयी थी। पूरी बाहर ही आ गयी थी। माथे पर सात टाँके आये। होंठ कट गया था। अब सब ठीक है।''

''पैसा कहाँ से आया?'' राहुल ने पूछा।

''दोस्तों ने दिया। कम्प्यूटर बेचना पड़ा। अब धीरे-धीरे सब चुका दूँगा।''

''और घर कबसे नहीं गया?''

''शायद आठ-दस दिन हो गये।'' विकास ने आराम से बताया।

''और घर का फोन?''

''वो डेड है।'' विकास ने बताया-''मैं भाड़ा कहाँ से देता? खाने के ही वाँदे पड़े हुए थे।''

''मेन्टिनेन्स भी नहीं दिया होगा?''

''हाँ।'' विकास बोला।

''तुझे यह सब बताना नहीं चाहिए था?'' राहुल झुँझला गया-''इस तरह बर्ताव करती है तुम लोगों की पीढ़ी अपने माँ-बाप के साथ?''

''पापा, आप तो लेक्चर देने लगते हो।'' विकास भी चिढ़ गया–''मकान कोई छीन थोड़े ही रहा है? अब नौकरी लग गयी है, सबकुछ दे दूँगा। अच्छा सुनो, मम्मी से बात कराओ न! ''

''मम्मी दिल्ली में है।''

''दिल्ली में? तो आप कहाँ हैं?'' विकास थोड़ा विस्मित हुआ।

''मुम्बई में। अपने घर में।'' राहुल ने बताया।

''ओके बाय, मैं शाम तक आता हूँ।'' विकास ने फोन काट दिया। उसकी आवाज में पहली बार कोई लहर उठी थी। क्या फर्क है? राहुल खुद से पूछ रहा था। सिर्फ इतना ही न कि मैं घर से भाग गया था और विकास घर से दूर है–अपनी तरह से जीता–मरता हुआ। अपनी एक समानान्तर दुनिया में। वह एक अदृश्य–सी डोर से अपने मम्मी–पापा के साथ बँधा हुआ है और राहुल की दुनिया में यह डोर भी नहीं थी। घर से भागने के पूरे सात वर्ष बाद जब जोधपुर में पिता का ब्रेन कैंसर से देहान्त हो गया, मां का मौन टूटा था। और माँ की आज्ञा से छोटे भाई ने उसका पता खोजकर उसे टेलीग्राम दिया था–''पिता नहीं रहे। अगर आना चाहो तो आ सकते हो।''

वह नहीं गया था। अगर पिता उसके जीवन से निकल गये थे, अगर माँ, माँ नहीं बनी रह सकी थी, अगर भाई–बहन उसे ठुकरा चुके थे तो राहुल ही क्यों एक बन्द दुनिया का दरवाजा खोलने जाता? जब अपने लहूलुहान शरीर को लिये वह घर से बाहर कूद रहा था तब दरवाजा खोलकर माँ बाहर आकर उसके कदमों की जंजीर नहीं बन सकती थी? पिता को एक बार भी खयाल नहीं आया कि बीस साल का एक इण्टर पास लड़का इतनी बड़ी दुनिया में कहाँ मर–खप रहा है?

राहुल बजाज ने पाया कि उसकी बायीं आँख से एक आँसू ढुलककर गाल पर उतर आया है। शायद बायीं आँख दिल से और दायीं आँख दिमाग से जुड़ी है। राहुल ने सोचा और अपनी खोज पर मुस्कुरा दिया।

दो बाइयों की मदद से घर शाम तक सामान्य स्थिति में आ गया। सोसायटी का सेक्रेटरी बदल गया था। नोटिस बोर्ड पर मेण्टिनेन्स न देनेवालों में राहुल बजाज का नाम भी शोभायमान था। राहुल ने पूरे हिसाब चुकता किये और बारह महीने के पोस्टडेटेड चेक सेक्रेटरी को सौंप दिये। बिजली के बिल के खाते में भी उसने पुराने चौदह सौ और अग्रिम सोलह सौ मिलाकर तीन हजार का चेक जमा करवा दिया। टेलीफोन सरेण्डर करने की अप्लीकेशन भी उसेने सेक्रेटरी को दे दी–साइन किये हुए क्रॉस्ड चेक के साथ। विकास के सारे गन्दे कपड़े धोबी के यहाँ भिजवा दिये।

टीवी, फ्रिज और वाशिंग मशीन उसने दस हजार रुपये में केतकी के एक दोस्त को बेच दिये। इसी दोस्त रेवती के पति ललित तिवारी के घर वह रात के खाने पर आमन्त्रित था।

रात आठ बजे विकास आया। वह अपने आप बैगपाइपर की बॉटल लाया था।

''आपने कहा था न, पहला पैग मेरे साथ पीना।'' विकास बोला, ''वह तो नहीं हो सका लेकिन मेरी नयी नौकरी की खुशी में हम एक साथ चियर्स करेंगे।''

''मंजूर है–'' राहुल निर्विकार था! ''मैं घर में ताला लगाकर जा रहा हूँ।''

''चलेगा।'' विकास तनिक भी परेशान नहीं हुआ–''मेरा दफ्तर मरोल में है। अँधेरी से मीरा रोड की ट्रेन में चढ़ना अब पॉसिबल नहीं रहा। मैं दफ्तर के पास ही कहीं पेइंग गेस्ट होने की सोच रहा हूँ।''

विकास रेवती और ललित के घर खाने पर नहीं गया। उसने पुष्पक होटल से अपने लिए चिकन बिरियानी मँगवा ली। अगली सुबह इतवार था। राहुल सोकर उठा तब तक विकास तैयार था। उसने पापा के लिए दो अण्डों का आमलेट बना दिया था।

''कहाँ?'' राहुल ने पूछा।

''मेरी रिहर्सल है।'' विकास ने कहा, ''आज शाम सात बजे बान्द्रा के रासबेरी में मेरा शो है।''

''क्या उस शो में मैं नहीं आ सकता?'' राहुल ने पूछा।

''क्या?'' विकास अचरज के हवाले था–''आप मेरा शो देखने आएँगे? लेकिन आप और मम्मी तो कुमार गन्धर्व, भीमसेन जोशी टाइप के लोगों...।''

''ऑफ्टर ऑल, जो तू गाता है वह भी तो संगीत ही है न?'' राहुल ने विकास की बात काट दी।

''येस्स!'' विकास ने दोनों हाथों की मुट्ठियां हवा में उछालीं–''मैं इन्तजार करूंगा।'' फिर वह अपना गिटार लेकर सीढ़ियाँ उतर गया। देर तक राहुल की आँख में विकास के कानों में लटकी बालियाँ और कलर किये गये छोटे–छोटे खड़े बाल उलझन की तरह डूबते–उतराते रहे। जब केतकी का फोन आया तो राहुल ठीक–ठाक बता नहीं पाया कि वो किसके साथ है–विकास के या अपने? केतकी जरूर विकास के साथ थी–''जब उसके लिए तुमने घर ही बन्द कर दिया है तो उसका अन्तिम संस्कार भी हाथों हाथ क्यों नहीं कर आते?'' वह रो रही थी। वह माँ थी और

स्वभावत: अपने बेटे के साथ थी। राहुल माँ को नहीं जानता। वह केतकी की रुदन से तनिक भी विचलित नहीं हुआ।

रासबेरी। नयी उम्र के लड़के-लड़कियों का डिस्कोथेंक। बाहर पोस्टर लगे थे-न्यू सेन्सेशन ऑफ इण्डियन रॉक सिंगर विकास बजाज। राहुल तीन सौ रुपये का टिकट लेकर भीतर चला गया। वहां अजीवोगरीब लड़के-लड़कियों की भीड़ थी। हवालों में चरस की गन्ध थी। बीयर का सुरूर था। यौवन की मस्ती थी। क्षण में जी लेने का उन्माद था। लड़कियों की जीन्स से उनके नितम्बों के कटाव झाँक रहे थे। लड़कों ने टाइट टी शर्ट पहनी हुई थी। उनके बाल चोटियों की तरह बँधे थे। स्लीवलेस टी शर्ट्स से उनके मसल्स छलके पड़े थे। ब्रा की कैद से आजाद लड़कियों के स्तन शर्ट्स के भीतर टेनिस के गेंद की तरह उछल रहे थे। राहुल वहाँ शायद एकमात्र अधेड़ था जिसे रासबेरी का समाज कभी-कभी कौतुक-भरी निगाह से निहार लेता था।

एक संक्षिप्त से अनाउन्समेण्ट के बाद विकास मंच पर था-अपने गिटार के साथ। उसने कान-फाड़ शोर के साथ गर्दन को घुटनों के पास तक झुकाते हुए पता नहीं क्या गीत गाया कि हॉल तालियों से गड़गड़ाने लगा, लड़कियाँ झूमने लगीं और लड़के उन्मत्त होकर नाचने लगे।

इस लड़के की रचना हुई है उससे? राहुल ने सोचा और युवक-युवतियों द्वारा धकेला जाकर एक कोने में सिमट गया। भीड़ पागल हो गयी थी और विकास के लिए 'वन्स मोर' का नारा लगा रही थी। राहुल का दिल दो-फाँक हो गया। उसने केतकी को फोन लगाया और धीरे से बोला, ''शोर सुन रही हो? यह विकास की कामयाबी का शोर है। मैं नहीं जानता कि मैं सुखी हूँ या दु:खी। पहली बार एक पिता बहुत असमंजस में है केतकी।'' राहुल ने फोन काट दिया और मंच पर उछलते-कूदते विकास को देखने लगा।

ब्रेक के बाद वह बाहर आ गया। 'हाय गाइज, हैलो गर्ल्स' करता हुआ विकास भी बाहर निकला। उसके मुँह में सिगरेट दबी थी। उसने राहुल के पाँव छू लिये और बोला, ''मैं बहुत खुश हूँ कि मेरा बाप मेरी खुशी को शेयर कर रहा है।''

''मेरे बच्चे!'' राहुल ने विकास को गले गला लिया-''जहाँ भी रहो, खुश रहो। मुझे अब जाना होगा। मेरी दस पैंतीस की फ्लाइट है। अपने सारे प्रेस किये हुए कपड़े तुझे रेवती आण्टी के घर से मिल जाएँगे।'' राहुल बजाज का गला रुँध गया था-

''कल से तू कहाँ रहेगा? क्या मैं घर की चाबियाँ...?''

राहुल बजाज के भीतर एक पिता पिघलता, तब तक विकास का बुलावा आ गया। उसने वापस राहुल के पाँव छुए और बोला, ''मेरी चिन्ता मत करो पापा! मैं ऐसा ही हूँ। आप जाओ। बेस्ट ऑफ जर्नी। सॉरी!'' विकास ने हाथ नचाये, ''मैं एयरपोर्ट नहीं आ सकता। माँ को प्यार बोलना।'' विकास भीतर चला गया। भीड़ और शोर और उन्माद के बीच।

बाहर अँधेरा उतर आया था। इस अँधेरे में राहुल बजाज बहुत अकेला, अशक्त और दुविधाग्रस्त था। वह सबके साथ होना चाहता था लेकिन किसी के साथ नहीं था। उसके पास न पिता था, ना माँ। उसके पास बेटा भी नहीं था। और दिल्ली पहुंचने के बाद उसके पास केतकी भी नहीं रहनेवाली थी। राहुल ने हाथ दिखाकर टैक्सी रोकी, उसमें बैठा और बोला, ''सान्ताक्रूज एयरपोर्ट।''

टैक्सी में गाना बज रहा था-''बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाए।''

धीरेन्द्र अस्थाना

जन्म : 25 दिसम्बर, 1956

प्रमुख कृतियाँ : आदमीखोर, मुहिम, विचित्र देश की प्रेमकथा, खुल जा सिमसिम (कहानी संग्रह)

अन्नपूर्णा मंडल की आखिरी चिट्ठी

–सुधा अरोड़ा

प्यारी माँ और बाबा,

चरण–स्पर्श

मुझे मालूम है बाबा, लिफाफे पर मेरी हस्तलिपि देखकर लिफाफे को खोलते हुए तुम्हारे हाथ काँप गये होंगे। तुम बहुत एहतियात के साथ लिफाफा खोलोगे कि भीतर रखा हुआ मेरा खत फट न जाय।

सोचते होगे कि एक साल बाद आखिर मैं तुम लोगों को खत क्यों लिखने बैठी। कभी तुम अपने डाकघर से, कभी बाबला या बउदी अपने ऑफिस से फोन कर ही लेते हैं फिर खत लिखने की क्या जरूरत! नहीं, डरो मत, ऐसा कुछ भी नया घटित नहीं हुआ है। कुछ नया हो भी क्या सकता है।

बस, हुआ इतना कि पिछले एक सप्ताह से मैं अपने को बार–बार तुम लोगों को खत लिखने से रोकती रही। क्यों? बताती हूँ। तुम्हें पता है न, बम्बई में बरसात का मौसम शुरू हो गया है। मैं तो मना रही थी कि बरसात जितनी टल सके, टल जाये, लेकिन वह समय से पहले ही आ धमकी। और मुझे जिसका डर था वही हुआ। इस बार बरसात में पार्क की गीली मिट्टी सनी सड़क से उठकर उन्हीं लाल केंचुओं की फौज घर के भीतर तक चली आई है। रसोई में जाओ तो मोरी के कोनों से ये कंचुए मुँह उचका–उचका कर झाँकते हैं, नहाने जाओ तो बाल्टी के नीचे कोने पर वे बेखौफ चिपके रहते हैं। कभी–कभी पैरों के नीचे अचानक कुछ पिलपिला–सा महसूस होता है और मैं डर जाती हूँ कि कहीं मेरे पाँव के नीचे आकर कोई केंचुआ मर तो नहीं

गया?

इस बार मुझे बाँकुड़ा का वह अपना (देखो, अब भी वही घर अपना लगता है) घर बहुत याद आया। बस, ये यादें ही तुम्हारे साथ बाँटना चाहती थी। पता नहीं तुम्हें याद है या नहीं, पता नहीं बाबला को भी याद होगा या नहीं, हम कितनी बेसब्री से बरसात के आने का इन्तजार करते थे। मौसम की पहली बारसात देखकर हम कैसे उछलते–कूदते माँ को बारिश के आने की खबर देते जैसे पानी की बूँदें सिर्फ हमें ही दिखाई देती हैं, और किसी को नहीं। पत्तों पर टप–टप–टप बूँदों की आवाज़ और उसके साथ हवा में गमकती फैलती मिट्टी की महक हमें पागल कर देती थी। हम अखबार को काट–काट कर कागज की नावें बनाते और उन्हें तालाब में छोड़ते। माँ झींकती रहतीं और हम सारा दिन पोखर के पास और आँगन के बाहर, हाथ में नमक की पोटली लिये बरसाती केंचुओं को ढूँढ़ते रहते थे। वे इधर–उधर बिलबिलाते से हमसे छिपते फिरते थे और हम उन्हें ढूँढ़–ढूँढ़ कर मारते थे। नमक डालने पर उनका लाल रंग कैसे बदलता था, केंचुए हिलते थे और उनका शरीर सिकुड़कर रस्सी हो जाता था। बाबला और मुझमें होड़ लगती थी कि किसने कितने ज़्यादा केंचुओं को मारा। बाबला तो एक–एक केंचुए पर मुट्ठी भर–भर कर नमक डाल देता था।

माँ तुम्हें याद है, तुम कितना चिल्लाती थीं बाबला पर.. इतना नमक डालने की क्या जरूरत है रे खोका। पर फिर हर बार जीतता भी तो बाबला ही था... उसके मारे हुए केंचुओं की संख्या ज्यादा होती थी। बाबा, तुम डाकघर से लौटते तो पूछते...तुम दोनों हत्यारों ने आज कितनों की हत्या की? फिर मुझे अपने पास बिठाकर प्यार से समझाते ...बाबला की नकल क्यों करती है रे! तू तो माँ अन्नपूर्णा है, देवीस्वरूपा, तुझे क्या जीव–जन्तुओं की हत्या करना शोभा देता है? भगवान् पाप देगा रे।

आज मुझे लगता है बाबा, तुम ठीक कहते थे। हत्या चाहे मानुष की हो या जीव–जन्तु की, हत्या तो हत्या है।

तो क्या बाबा, उस पाप की सजा यह है कि बाँकुड़ा के बाँसपुकुर से चलकर इतनी दूर बर्म्बी के अँधेरी इलाके के महाकाली केब्स रोड के फ्लैट में आने के बाद भी वे सब केंचुए मुझे घेर–घेरकर डराते हैं, जिन्हें पुकुर के आस–पास नमक छिड़क–छिड़क कर मैंने मार डाला था।

यह मेरी शादी के बाद की पाँचवी बरसात है। बरसात के ठीक पहले ही तुमने मेरी शादी की थी। जब बाँकुड़ा से मुम्बई के लिए मैं रवाना हुई, तुम सबकी नम आँखों में कैसे दिये टिमटिमा रहे थे जैसे तुम्हारी बेटी न जाने कौन से परीलोक जा रही है, जहाँ दिव्य अप्सराएँ उसके स्वागत में फूलों के थाल हाथों में लिये खड़ी होंगी। यह परीलोक, जो तुम्हारा देखा हुआ नहीं था पर तुम्हारी बेटी के सुन्दर रूप के चलते उसकी झोली में आ गिरा था, वर्ना क्या अन्नपूर्णा और क्या उसके डाकिये बापू शिबू मंडल की औकात थी कि उन्हें रेलवे की स्थायी नौकरी वाला सुदर्शन वर मिलता? तुम दोनों तो अपने जमाई राजा को देख-देख कर ऐसे फूले नहीं समाते थे कि मुझे बी.ए. की सालाना परीक्षा में भी बैठने नहीं दिया और दूसरे दर्जे की आरक्षित डोली में बिठाकर विदा कर दिया।

जब मैं अपनी बिछुआ-झाँझर सँभाले इस परीलोक के द्वार दादर स्टेशन पर उतरी तो देखा जैसे तालाब में तैरना भूल गई हूँ। इतने आदमी तो मैंने अपने पूरे गाँव में नहीं देखे थे। यहाँ स्टेशन के पुल की भीड़ के हुजूम के साथ सीढ़ियाँ उतरते हुए लगा जैसे पेड़ के सूखे पत्तों की तरह हम सब हवा की एक दिशा में झर रहे हैं। देहाती-सी लाल साड़ी में तुम्हारे जीवन भर की जमा-पूँजी के गहने और कपड़ों का बक्सा लिये जब अँधेरी की ट्रेन में इनके साथ बैठी तो साथ बैठे लोग मुझे ऐसे घूर रहे थे जैसे मैं और बाबला कभी-कभार कलकत्ता के चिड़ियाघर में वनमानुष को घूरते थे। और जब महाकाली केब्स रोड के घर का जंग खाया ताला खोला तो जानते हो, सबसे पहले दहलीज पर मेरा स्वागत किया था-दहलीज की फांकों में सिमटे-सरकते, गरदन उचकाते लाल-लाल केंचुओं ने। उस दिन मैं बहुत खुश थी। मुझे लगा, मेरा बाँकुड़ा मेरे आँचल से बँधा-बँधा मेरे साथ चला आया है। मैं मुस्कुराई थी। पर मेरे पति तो उन्हें देखते ही खूंखार हो उठे। उन्होंने चप्पल उठाई और चटाख्-चटाख् सबको रौंद डाला। एक-एक वार में उन्होंने सबका काम तमाम कर डाला था। तब मेरे मन में पहली बार इन केंचुओं के लिए माया-ममता उभर आई थी। उन्हें उस तरह कुचले जाते हुए देखना मेरे लिए बहुत यातनादायक था।

दस दिन हमें एकान्त देकर आखिर इनकी माँ और बहन भी अपने घर लौट आई थीं। अब हम रसोई में परदा डालकर सोने लगे थे। रसोई की मोरी को लाख बन्द करो, ये केंचुए आना बन्द नहीं करते थे। पति अक्सर अपनी रेलवे की ड्यूटी पर सफर में रहते और मैं रसोई में। और रसोई में बेशुमार केंचुए थे। मुझे लगता था, मैंने अपनी माँ की जगह ले ली है और अब मुझे सारा जीवन रसोई की इन दीवारों के बीच

इन केंचुओं के साथ गुजारना है। एक दिन एक केंचुआ मेरी निगाह बचाकर रसोई से बाहर चला गया और सास ने उसे देख लिया। उनकी आँखें गुस्से से लाल हो गईं। उन्होंने चाय के खौलते हुए पानी की केतली उठायी और रसोई में बिलबिलाते सब केंचुओं पर गालियाँ बरसाते हुए उबलता पानी डाल दिया। सच मानो बाबा, मेरे पूरे शरीर पर जैसे फफोले पड़ गये थे, जैसे खौलता हुआ पानी उन पर नहीं, मुझ पर डाला गया हो। वे सब फौरन मर गये, एक भी नहीं बचा। लेकिन मैं जिन्दा रही। मुझे तब समझ में आया कि मुझे अब बाँकुड़ा के बिना जिन्दा रहना है। पर ऐसा क्यों हुआ बाबा, कि मुझे केंचुओं से डर लगने लगा। अब वे जब भी आते, मैं उन्हें वापस मोरी में धकेलती, पर मारती नहीं। उन दिनों मैंने यह सब तुम्हें खत में लिखा तो था, पर तुम्हें मेरे खत कभी मिले ही नहीं। हो सकता है, यह भी न मिले। यह मिल भी जाये तो तुम कहो कि नहीं मिला। फोन पर मैंने पूछा भी था-चिट्ठी मिली? तुमने अविश्वास से पूछा-पोस्ट तो की थी या...। मैं हँस दी थी-अपने पास रखने के लिए थोड़े ही लिखी थी।

फोन पर इतनी बातें करना सम्भव कहाँ है। फोन की तारों पर मेरी आवाज जैसे ही तुम तक तैरती हुई पहुँचती है, तुम्हें लगता है, स..ब ठीक है। जैसे मेरा जिन्दा होना ही मेरे ठीक रहने की निशानी है। और फोन पर तुम्हारी आवाज सुनकर मैं परेशान हो जाती हूँ क्योंकि फोन पर मैं तुम्हें बता नहीं सकती कि तुम जिस आवाज को मेरी आवाज समझ रहे हो, वह मेरी नहीं है। तुम फोन पर मेरा कुशल-क्षेम ही सुनना चाहते हो और मैं तुम्हें केंचुओं के बारे में कैसे बता सकती हूँ? तुम्हारी आवाज से मैं चाहकर भी तो लिपट नहीं सकती। मुझे तब सत्रह सौ किलोमीटर की दूरी बुरी तरह खलने लगती है।

इतनी लम्बी दूरी को पार कर डेढ़ साल पहले जब मैं वहां बाँकुड़ा पहुँची थी, मुझे लगा था, मैं किसी अजनबी गाँव में आ गई हूँ जो मेरा नहीं है। मुझे वापस जाना ही है, यह सोचकर मैं अपने आने को भी भोग नहीं पायी। मैंने शिथिल होकर खबर दी थी कि मुझे तीसरा महीना चढ़ा है। मैं आगे कुछ कह पाती कि तुम सब में खुशी की लहर दौड़ गई थी। माँ ने मुझे गले से लगा लिया था, बउदी ने माथा चूम लिया था। मैं रोई थी, चीखी थी, मैंने मिन्नतें की थीं कि मुझे यब बच्चा नहीं चाहिए, कि उस घर में बच्चे की किलकारियाँ सिसकियों में बदल जायेंगी, पर तुम सब पर कोई असर नहीं हुआ। तुम चारों मुझे घेरकर खड़े हो गये...भला पहला बच्चा भी कोई गिराता है, पहले बच्चे को

गिराने से फिर गर्भ ठहराता ही नहीं, माँ बनने में ही नारी की पूर्णता है, माँ बनने के बाद सब ठीक हो जाता है, औरत को जीने का अर्थ मिल जाता है। माँ, तुम अपनी तरह मुझे भी पूर्ण होते हुए देखना चाहती थी। मैंने तुम्हारी बात मान ली और तुम सब के सपनों को पेट में सँजोकर वापस लौट गई।

वापस। उसी महाकाली की गुफाओं वाले फ्लैट में। उन्हीं केंचुओं के पास। बस, फर्क यह था कि अब वे बाहर फर्श से हटकर मेरे शरीर के भीतर रेंग रहे थे। नौ महीने में अपने पेट में एक दहशत को आकार लेते हुए महसूस करती रही। पाँचवें महीने मेरे पेट में जब उस आकार ने हिलना-डुलना शुरू किया, मैं भय से काँपने लगी थी। मुझे लगा, मेरे पेट में वही बरसाती केंचुए रेंग रहे हैं, सरक रहे हैं। आखिर वह घड़ी भी आई, जब उन्हें मेरे शरीर से बाहर आना था और सच माँ, जब लम्बी बेहोशी के बाद मैंने आँख खोलकर अपने बगल में लेटी सलवटों वाली चमड़ी लिये अपनी जुडवाँ बेटियों को देखा, मैं सकते में आ गई। उनकी शक्ल वैसी ही गिजगिजी लाल केंचुओं जैसी झुर्रीदार थी। मैंने तुमसे कहा भी था...देखो तो माँ, ये दोनों कितनी बदशक्ल हैं, पतले-पलते, ढीले-ढीले हाथ-पैर और साँवली-मरगिल्ली-सी। तुमने कहा था, बड़ी बोकी है रे तू, कैसी बातें करती है, ये साक्षात् लक्ष्मी सरस्वती एक साथ आई हैं तेरे घर। तुम सब ने कलकत्ता जाकर अपनी बेटी और जमाई बाबू के लिए कितनी खरीदारी की थी, बउदी ने खास सोने का सेट भिजवाया था। सब दान-दहेज समेटकर तुम यहाँ आईं और चालीस दिन मेरी, इन दोनों की और मेरे ससुराल वालों की सेवा-टहल करके लौट गई। इन लक्ष्मी-सरस्वती के साथ मुझे बाँधकर तुम तो बाँकुड़ा के बाँसपुकुर लौट गईं, मुझे बार-बार यही सुनना पड़ा-एक कपाल कुण्डला को अस्पताल भेजा था, दो को और साथ ले आई। बाबा, कभी मन होता था-इन दोनों को बाँधकर तुम्हारे पास पार्सल से भिजवा दूँ कि मुझसे ये नहीं संभलतीं, अपनी ये लक्ष्मी सरस्वती-सी नातिनें तुम्हें ही मुबारक हों पर हर बार इनकी बिटर-बिटर-सी ताकती हुई आँखें मुझे रोक लेती थीं।

माँ, मुझे बार-बार ऐसा क्यों लगता हे कि मैं तुम्हारी तरह एक अच्छी माँ कभी नहीं बन पाऊंगी जो जीवन भर रसोई की चारदीवारी में बाबला और मेरे लिए पकवान बनाती रही और फालिज की मारी ठाकुर माँ की चादरें धोती-समेटती रही। तुम्हारी नातिनों की आँखें मुझसे यह सब माँगती हैं जो मुझे लगता है, मैं कभी उन्हें दे नहीं पाऊँगी।

इन पाँच-सात महीनों में कब दिन चढ़ता था, कब रात ढल जाती थी, मुझे तो पता ही नहीं चला। इस बार की बरसात ने आकर मेरी आँखों पर छाये सारे परदे गिरा दिये हैं। ये दोनों घिसटना सीख गई हैं। सारा दिन कीचड़-मिट्टी में सनी केंचुओं से खेलती रहती हैं। जब ये घुटनों से घिसटती हैं, मुझे केंचुए रेंगते दिखाई देते हैं और जब बाहर सड़क पर मैदान के पास की गीली मिट्टी में केंचुओं को सरकते देखती हूं तो उनमें इन दोनों की शक्ल दिखाई देती है। मुझे डर लगता है, कहीं मेरे पति घर में घुसते ही इन पर चप्पलों की चटाख-चटाख बौछार न कर दें या मेरी सास इन पर केतली का खौलता हुआ पानी न डाल दें। मैं जानती हूं, यह मेरा वहम है पर यह लाइलाज है और मैं अब इस बहम का बोझ नहीं उठा सकती।

इन दोनों को अपने पास ले जा सको तो ले जाना। बाबला और बउदी शायद इन्हें अपना लें। बस, इतना चाहती हूँ कि बड़ी होने पर ये दोनों अगर आसमान को छूना चाहें तो यह जानते हुए भी कि वे आसमान को कभी नहीं छू पायेंगी, इन्हें रोकना मत।

इन दोनों के रूप में तुम्हारी बेटी तुम्हें सूद सहित वापस लौट रही हूँ। इनमें तुम मुझे देख पाओगे शायद।

बाबा, तुम कहते थे न-आत्मायें कभी नहीं मरतीं। इस विराट व्योम में, शून्य में, वे तैरती रहती हैं-परम शान्त होकर। मैं उस शान्ति को छू लेना चाहती हूँ। मैं थक गई हूँ बाबा। हर शरीर के थकने की अपनी सीमा होती है। मैं जल्दी थक गई, इसमें दोष तो मेरा ही है। तुम दोनों मुझे माफ कर सको तो कर देना।

इति।

तुम्हारी आज्ञाकारिणी बेटी,
अन्नपूर्णा मंडल

सुधा अरोड़ा

जन्म : 4 अक्तूबर, 1946

प्रमुख कृतियाँ : बगैर तराशे हुए, युद्ध विराम, महानगर की मैथिली (कथा संग्रह)

मिशन जंगल और गिनीपिग

–नमिता सिंह

'मिशन जंगल' में जब उसे शामिल किया गया तो वह रोमांचित था। वह एक वैज्ञानिक था। बायो टेक्नोलॉजी विशेषज्ञ। वह डिफेंस प्रयोगशाला में काम करता था और इन दिनों वहां चल रहे कई प्रोजेक्ट्स में शामिल था। दो साल पहले उसे एक रिसर्च प्रोजेक्ट का इंचार्ज भी बना दिया गया और उन्हीं दिनों मिलिट्री सीक्रेट सर्विस में उसे शामिल किया गया। उसके कमांडर-इन-चीफ़ उसके काम से बहुत खुश थे।

उसे काम करने का नशा था। काम करने के अलावा उसके पास दुनिया में और कोई काम नहीं था। वो अपनी रिसर्च से अलग कुछ और सोचना भी नहीं चाहता था।

उसे नहीं मालूम ऐसा उसके साथ कब से हुआ। वह अपनी रिसर्च की डिग्री लेकर यूनीवर्सिटी से निकला। एक अच्छी-सी नौकरी करना और फिर घर परिवार बनाना चाहता था वह। उषा की मौजूदगी, हां, यही नाम था उसका, ताजा हवा का अहसास देती। डिफेंस लैब के एक रिसर्च प्रोजेक्ट में उसके साथ काम कर रही थी। वे लोग चूहों के स्नायु तंत्र और उनके हारमोनों में परिवर्तन करके कई तरह के प्रयोग कर रहे थे। चूहों के मस्तिष्क के किसी केन्द्र को अलग-अलग तरीकों से निष्क्रिय कर दिया जाता है और स्नायु केंद्रों को प्रभावित करके शरीर पर होने वाली प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता था। इसी के साथ शरीर में पाए जाने वाले हारमोनों की मात्राएँ घटाकर या बढ़ाकर उससे होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन भी उन शोध परियोजनाओं का हिस्सा था। मसलन, स्नायु तंत्र को प्रभावित करके चूहे के डरने की प्रवृत्ति नष्ट कर दी जाती। इसके बाद चूहा खुद बिल्ली के पिंजरे में प्रवेश करने लगता। इसी तरह हारमोनों में बदलाव लाकर चूहा किसी चूहिया को देखता तो डरकर भाग छूटने की

कोशिश करता। एक प्रयोग में तो ऐसा कुछ चूहे के शरीर में किया गया कि वह चुहिया को देखते ही भयंकर रूप से आक्रामक हो जाता और उसे जान से मार कर ही दम लेता।

उषा का रिसर्च में तनिक भी मन नहीं था। उसे अपने महत्वपूर्ण समझे जाने वाले प्रोजेक्ट में जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। वह पिंजरों में बंद चूहों के पास फटकती भी नहीं थी। इधर-उधर घूमती। किताबें पढ़ती रहती। पुराने कागज-पत्तर टटोलती और जल्दी ही उकता जाती। वह उषा को बेचैनी से देखता। उसे समझाने की कोशिश करता और अंत में हाकरकर उसके हिस्से का भी काम कर देता। वह दिन-रात लगा रहता और दुगना काम करता। उसके डायरेक्टर प्रोजेक्ट पर चल रहे काम की प्रगति से बहुत खुश थे।

पूरे तीन महीने की गैर हाजिरी के बाद एक दिन उषा उससे मिलने आई। वह बहुत खुश हुआ। उसने सारे डॉक्यूमेंट्स, अब तक का पूरा काम और रिजल्ट्स उसके सामने रख दिए। कहा कि वह जल्दी-जल्दी पढ़ ले। समझ ले। जल्दी ही डायरेक्टर के साथ मीटिंग होने वाली है। उषा मुस्कुराती रही। फाइल के पन्ने उलटती रही और अचानक उन्हें उछाल दिया। वह परेशान हो उठा और दौड़-दौड़ कर कागज बटोरने लगा।

''क्या कर रही हो तुम! सारी मेहनत मिट्टी में मिला दोगी। जानती नहीं कि कितना जरूरी और महत्त्वपूर्ण काम है यह।''

''मुझे मालूम है, लेकिन मैं इससे भी ज्यादा जरूरी काम जानती हूँ। मैं तुम्हें लेने आई हूँ।''

''हमारे चूहों का क्या होगा! कितनी खास रिसर्च है यह। हमारे राष्ट्र को, जरूरत है इसकी। हमें दुनिया में अपना...।''

''नहीं, हमें नहीं चाहिए गिनीपिग। चूहों के अलावा और भी जरूरते हैं हमारी। मैं इस रिसर्च प्रोजेक्ट की हकीकत जानती हूँ।'' उषा ने उसकी बात काटते हुए कहा।

''क्या तुम्हें ये काम...देश के विकास में हमारा योगदान...अच्छा नहीं लगता! ये ही तो उन्नति के रास्ते हैं।''

''रास्ते और भी हैं! मुझे खुला आसमान भी अच्छा लगता है। सवेरे की खुशनुमा, मस्त हवा भी तो जीने के लिए जरूरी है। अच्छा बताओ, तुमने कभी किसी नदी की अठखेलियाँ देखी हैं। बारिश की बूँदों की ठंडक और धरती की सोंधी महक... बताओ

कैसी होती है! जीवन का कौन-सा रहस्य है उसमें...''

वह जाने कैसी-कैसी बातें कर रही थी। फिर नाराज हो गई और कहने लगी, ''अच्छा बाताओ, कब से अपनी लैब से बाहर नहीं निकले हो! सवेरे की भीगी ओस पर चलना कब से नहीं हुआ! चेहरा कैसा पीला पड़ रहा है तुम्हारा!''

''वो...वो... दरअसल पिछले महीनों में काम बहुत रहा। मैं यहीं लैब के बराबर वाले कमरे में सो जाता हूं। मेरे चूहे वहां रहते हैं न! उन्हें भी देखना पड़ता है! लेकिन तुम अपना काम तो समझ लो!''

और उसने मेज पर कागज फैला दिए। उनमें बनी ढेर सारी तालिकाओं को, प्रयोगों के परिणामों को समझाते-समझाते, वह अंकों के गणित में उलझता चला गया...। उषा कब उठकर चली गई, उसे पता ही नहीं चला।

उसकी शोध परियोजना की सफलता का ही नतीजा है कि उसे मिलिट्री सीक्रेट सर्विस का सदस्य बना लिया गया! रिसर्च विंग के चीफ ने जो उसके कमांडर थे, उसे बताया-

''हमें तुम्हारे जैसे ही मेहनती और निष्ठावान वैज्ञानिक चाहिए। अब तो रोबोट के अलावा विश्वासपात्र और कर्मठ लोग मिलना मुश्किल है। हमें खुशी है कि तुम हमारे साथ काम कर रहे हो।''

कमांडर उसकी तारीफ करते हुए पीठ थपथपा रहा था और हँस रहा था। उषा ने भी एक दिन नाराज होकर उससे यही कहा था, ''मुझे शक होता है। तुम आदमी हो या रोबोट!''

''उषा, मैं तुम्हें नए प्रोजेक्ट के बारे में बता रहा हूँ। हम लोग ह्यूमन क्लोनिंग का इस्तेमाल फौज में करना चाहते हैं। अभी इन संभावनाओं पर एक मीटिंग हमने की है...''

''प्लीज, मुझे तुमसे कुछ नहीं जानना। मुझे अब तुमसे डर लगने लगा है। कहीं धोखे से तुम मेरे डी.एन.ए. का इस्तेमाल करके मेरा ही क्लोन न बना लो और फिर अपनी चूहों वाली टैक्नीक से एक जीता जागता गुलाम...जैसे तुम्हारे चूहे हैं। उषा-द-स्लेव-माई रिसर्च-माई क्लोन...!''

उसके जाने के बाद एक दिन अकेले में सोचता रहा वह। उषा का वह आइडिया बुरा नहीं था। ये औरतें-त्रिया चरित्र - इतने नखरे। दुनिया के आधे झगड़े औरतों की

वजह से होते हैं। बाहरी शकल सूरत से ही किसी की पहचान बनती है। एक खास शकल वाले इंसान को एक खास नाम दे देते हैं हम। मनुष्य की आत्मा-उसका सोच...सब बकवास। सबके वही हृदय, वहीं फेफड़े, एक सा ज़िगर, एक से गूर्दे। आदमी के दिमाग की चाबी पूरे तौर पर जल्दी ही हमारे हाथ में होगी। तब लैब में बनी उषा मेरी होगी। वह सिर्फ मेरी आज्ञा मानेगी। बारिश में नहाने की जुर्रत भी नहीं करेगी। अरे, इतना डरेगी वह खुली हवा में जाने से कि बस!... भविष्य की इस योजना के बारे में कल्पना करता हुआ वह खुश हो गया।

हाँ, तो उसका कमांडर, उसका चीफ, उसके काम की तारीफ कर रहा था। आदमी के दिमाग को, शरीर विज्ञान की क्रियाओं को कैसे-कैसे बदला जा सकता है..वह बायो इंजीनियरिंग की अहम भूमिका के बारे में बात कर रहा था।

उसका कमांडर एक दिलचस्प आदमी था। वह अपने काम के प्रति जितना गंभीर था उतनी ही गंभीरता से वह शराब पीता और जम कर पीता था। पीते-पीते उसका चेहरा लाल हो जाता। उसके मोटे-मोटे गाल और फूल कर कुप्पा हो जाते। आँखें तैरने लगतीं। उसकी बातें... जैसे वह किसी दूसरी दुनिया में पहुँच गया हो। जीवन के नए रहस्यों को खोलता। नितांत अनुछई कंदराओं में विचरने लगता, गुफाओं के द्वार तलाशता। ऐसे वक्त वह चौकन्ना हो उठता। कमांडर न जाने किस रहस्य का सूत्र उसके हाथ में थमा दे। कौन-सा गूढ़ प्रश्न उसके सामने उछाल दे।

उस दिन बोलते-बोलते अचानक कमांडर ने उससे कहा कि वह बगल की कुर्सी पर आकर बैठे। वह सामने से उठकर पास आ गया। कमांडर ने फुसफुसा कर कहा कि अबकी नए सीक्रेट मिशन पर वह जाएगा कमांडर के साथ। उसे दिखाएगा सीक्रेट सर्विस की शानदार उपलब्धि। एक रिसर्च प्रोजेक्ट की शानदार सफलता।

रोमांचित हो उठा वह। उसने कभी सोचा भी नहीं था कि ऐसा महत्त्वपूर्ण अवसर मिलेगा उसे। कमांडर ने यह भी कहा कि इस मिशन में वह उसके साथ डिप्टी की हैसियत से रहेगा। वहां के अनुभवों के आधार पर उसे अपनी रिसर्च आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी। डिफेंस के सारे रिसर्च प्रोजेक्ट राष्ट्र की सेवा में समर्पित हैं...कमांडर ने एक बार फिर उसे याद दिलाया।

वह बहुत खुश हुआ। उसे मालूम था कि यह सम्मान अपने काम की वजह से मिला है। बिना प्रश्नचिह्न लागए, निष्ठापूर्वक काम करने की वजह से मिला है। उसने आज तक यह नहीं पूछा कि फलाँ प्रोजेक्ट किस विभाग का है या फलाँ प्रोजेक्ट का

रिसर्च डाटा कहाँ गया। उसे तो बस एक ही बात मालूम कि अपने काम को करते रहना है। यह वैज्ञानिक शोध राष्ट्र विकास के लिए है। दुश्मनों को नेस्तनाबूद करने के लिए है। हाँ, ये सब कैसे होना है...या दुश्मन कौन हैं...कहाँ-कहाँ हैं...उसे कुछ नहीं मालूम। उसे ये मालूम करना भी नहीं। उसे सिर्फ अपने काम से मतलब था।

उषा के जाने के बाद तो सचमुच अपने शोध और चूहों के अलावा उसकी जिंदगी में कुछ और नहीं रह गया। उसे समझ ही नहीं आता कि वह क्या बात करे...क्या सोचे। उसके रहने, खाने-पीने की तथा सभी तरह की जरूरतें पूरी कर दी जातीं। सब उसका खयाल रखते। बाकी उसके चूहे...उसके प्रयोग...प्रयोगों की नतीजे...नतीजों पर विचार-विमर्श। सचमुच काम के अलावा उसे कुछ और कहने-सुनने की आदत नहीं रह गई थी।

कभी-कभी उषा का चेहरा उसके सामने घूम जाता। लंबा चेहरा, दूर न जाने कहाँ देखती बड़ी-बड़ी आँखें...कुछ बोलने की मुद्रा में सधे होंठ...वह सिर पटक देता। जब कभी उसका ध्यान आता, वह और ज्यादा काम में डूब जाता।

नियत दिन और समय पर वह कमांडर के साथ चल दिया। उनकी गाड़ी के आगे-पीछे दो और गाड़ियाँ चल रही थीं। कमांडर बहुत महत्त्वपूर्ण पद पर था।

कमांडर ने उससे कहा कि 'मिशन जंगल' के बारे में वह कुछ संकेत देना चाहता है, इसीलिए चलने से पहले दो घंटे उसने कमांडर के कक्ष में बिताए। वहां कई देशों के नक्शे लगे थे। कई क्षेत्रों के अलग-अलग नक्शे भी थे। कहीं-कहीं लाल-नीले निशान लगे थे। कुछ रास्ते चिन्हित थे।

वह इंतजार करता रहा निर्देशों का लेकिन कमांडर बैठा नाश्ता करता हरा, बतियाता रहा। अजीब आदमी है। कहता था मिशन जंगल पर बात करनी है और बैठा गप्प मार रहा है। कमांडर इत्मीनान से बैठा अंडे खा रहा था, जूस पी रहा था और धीमे-धीमे बोल रहा था।

वह देश की बात करने लगा। खतरे बाहर से थे और खतरे भीतर भी पैदा हो रहे थे। वह चिंतित लगता था। कहने लगा कि पिछले कई सालों से हमारी फौजें कश्मीर में तैनात हैं। पूर्व से लेकर पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक कई सीमा क्षेत्रों में लगी है। रेगिस्तान में फैली हैं, बर्फीले पहाड़ों में टंगी हैं या जंगलों में बिखरी पड़ी हैं। चाहे पुलिस का सिपाही हो या फौज का, अफसर हो या कमांडर, सभी दबाव में जी रहे हैं। इन दबावों का विस्फोट खतरनाक है।

"टेरिबल स्ट्रैस! हम सब तनाव में ही रहे हैं..." कहते-कहते कमांडर खामोश हो गया। वह खाना खत्म कर चुका था। फिर वह हौले-हौले उँगलियों से मेज थपथपाने लगा माना किसी गाने की संगत कर रहा हो। फिर मुस्कुरा कर बोला, "बड़ी कुत्ती चीज है फौज की यह नौकरी..." कमांडर जब कभी हल्के मूड में होता तो अपनी भदेस बोली में उत्तर आता।

दरअसल कमांडर रोज हेडक्वार्टर पहुँच रही रिपोर्टों से परेशान था और उनके बारे में बताना चाहता था। अक्सर कहीं-न-कहीं फौजी आपस में भिड़ जाते। बेवजह गोलियाँ चलाने लगते। ड्यूटी के समय आत्महत्या कर लेते। पिछले महीने एक हादसा हुआ था। बार्डर सिक्योरिटी फोर्स के सिपाही ने अपने बॉस को गोली से उड़ा दिया । वह पिछले कुछ दिनों से छुट्टी मांग रहा था और घर जाना चाहता था। फिर जब उसे अहसास हुआ कि वह क्या कर बैठा है तो अपनी ओटोमेटिक रायफल से चारों ओर गोलियाँ बरसाते हुए उसने चार और लोगों को घायल कर दिया जो उसे पकड़ना चाहते थे और अंत में खुद को गोली मार ली।

कमांडर इन घटनाओं से चिंतित लगता था। उसका कहना था कि फौज में जाओ तो दिल घर पर छोड़कर आओ। दिल और दिमाग एक साथ नहीं चल सकते। लड़ाइयाँ दिमाग से लड़ी जाती हैं। अपनी वर्दी से हर फौजी खुद को मोर्चे पर समझे। वर्दी माने मोर्चा। मोर्चा माने दिमाग। दिमाग माने राष्ट्र.. और राष्ट्र माने मोर्चो...राष्ट्र माने युद्ध। युद्ध चाहे घर के भीतर हो या बाहर, सीमा पर।

"तुम्हारा दिल कहाँ है माय डियर! क्वीन ऑफ हार्ट्स! कहीं कोई हो तो छोड़ दो उसे। यहाँ सिर्फ हुक्म का बादशाह चलेगा। हुक्म का एक्का और बादशाह हा..हा..हा..हा..।" कमरा उसके ठहाकों से गूँज उठा।

वह कसमसाकर रह गया। क्वीन ऑफ हार्ट्स...भीग रही होगी कहीं बारिश में।

हाँ तो उनकी गाड़ी के आगे-पीछे गाडियां और थीं। दोनों में एक-एक अफसर के साथ हथियारबन्द सैनिक। खासा लंबा रास्ता तय कर चुके थे वे लोग।

शाम ढलने को थी जब उनकी गाड़ी रुकी। उसने नीचे उतरकर चारों ओर नजर डाली। ऊपर देखा। आसमान में बादलों की सफेद गुच्छियाँ उतरती शाम के झुटपुटे में सुरमई रंग पहनकर सिंदूरी हो रही थीं। गुलाबी गालों वाले नटखट बच्चे बादलों के घेरे से जबरदस्ती झाँकने की कोशिश कर रहे थे। उसका दिल चाहा कि वह खड़ा रहे वहीं पर। ...यूं ही देखता रहे। ओहो, उसने कब से ऐसा आसमान नहीं देखा था। इतना रंग-

बिरंगा।

गाड़ियों से उतरकर दोनों आफिसर कमांडर को सेल्यूट कर रहे थे। उसकी तंद्रा टूटी। उसे तो कमांडर के साथ आगे जाना है। इस बीच एक और लंबी गाड़ी उन्हें लेने के लिए आ चुकी थी। उसका फौजी वर्दी में ड्राइवर और एक अन्य अफ़सर दरवाजा खोलकर खड़े थे, उनके लिए।

उसका कमांडर, इंचार्ज मिशन जंगल, धँस गया गाड़ी में। वह भी साथ बैठ गया था। गाड़ी अब जंगल के बीच से होकर गुजर रही थी। गाड़ी की तेज हैड लाइट्स सामने का रास्ता मानों साफ करती चल रही थी। इधर-उधर पड़ती रोशनी जंगल के घने में फँसकर खो जाती। खासा बड़ा और गहरा घना जंगल है... उसने महससू किया। धीरे-धीरे जंगल हल्का होता हुआ खत्म हो गया। रात पूरी तरह फैल चुकी थी। अब एक पतली साफ-सुथरी सड़क सामने थी।

जल्दी ही वे एक इमारत के सामने थे। दो फौजी स्वागत करने के लिए खड़े थे। लंबा पोर्टिको, फिर पाँच सीढ़ियाँ, उन पर हथियार बंद सैनिक सावधान की मुद्रा में। इमारत के बाहरी गेटी के सामने थोड़ी दूरी पर एक ऊंची निगरानी टावर अब साफ़ नजर आ रही थी। वहाँ खिड़कियों पर तैनात हथियार बंद सुरक्षा गार्डों की नजरें जरूर उन लोगों पर टिकी होंगी, उसने महसूस किया।

पाँच सीढ़ी ऊपर और फिर पाँच सीढ़ी नीचे। वे अब एक बड़े हॉल में थे। यह पाँच का क्या चक्कर है? कहीं कोई टोटका तो नहीं! अब तो पूरे मुल्क के सारे काम शुभ-अशुभ भविष्यवाणियों और टोने-टोटकों पर चल रहे हैं। क्या पता किसी ने यहां की शोध प्रयोगशालाओं के लिए पाँच की संख्या शुभ बता दी हो!

हॉल की खासी ऊंची छत और उसकी बनावट पुरानेपन का आभास दे रही थी लेकिन बाहर से उसकी रंगत और रखरखाव एकदम आधुनिक था। उसका कमांडर उन फौजियों से लगभग फुसफुसाकर बोल रहा था और वे भी उसी तरह जवाब दे रहे थे। शायद धीमे बोलना यहाँ के नियमों में हो, उसने सोचा। रात हो चली। लंबे सफर के बाद वह थकान महसूस करने लगा। खाने के मेज पर भी वही फौजी अफसर उनके साथ थे। सब लोग जमकर खा रहे थे और पी रहे थे।

कमांडर खाते ही अपने कमरे में चला गया। उसे मालूम था कि अभी थोड़ी देर वह और बैठेगा। दो-तीन पेग और चढ़ाएगा। ज्यादा पी लेने का उस पर कोई असर नहीं होता था सिवाय इसके कि उसकी मूँछे हिलने लगतीं।

उसे देर रात तक अपने कमरे में नींद नहीं आई। यह इमारत, यहाँ का पूरा माहौल रहस्यमय था। उसने बाहर झाँका। कमांडर के कमरे के बाहर एक हथियार बंद सिपाही मुस्तैदी से खड़ा था। वह फिर बिस्तर पर आकर पड़ गया।

किसी महत्त्वपूर्ण फौजी मिशन को, जो नितांत गोपनीय है, इतने करीब से देखना बहुत ही दुर्लभ होता है। इस सीक्रेट मिशन का वह एक हिस्सा है...यह सोचकर वह भीतर तक हिल गया। वह एक वैज्ञानिक है। उसने सिर्फ अपने शोधकार्य से मतलब रखा है। शोध का मतलब है नतीजा... रिजल्ट्स! लोग सिर्फ काम देखते हैं। किए गए काम से क्या लाभ हुआ...क्या आगे प्राप्त होगा...बस, यही महत्त्वपूर्ण है। क्या करो! कैसे करो! यह अपनी मर्जी पर है- इसे कोई नहीं पूछेगा। !''वी वॉण्ट रिजल्ट्स...ओनली रिजल्ट्स''... उसके प्रोजेक्ट के निदेशक ने कहा था एक बार।

वह भी लगातार इसी निष्ठा से काम करता रहा और उसे उत्साहवर्धक नतीजे मिलते रहे हैं। हर सौंपे गए काम को उसने पूरी ईमानदारी से किया है। वह काम क्यों किया जा रहा है। किस के लिए किया जा रहा है। उसने कभी कोई सवाल नहीं किया। काम करके प्रयोगों के आँकड़े निदेशक को थमाता रहा इसलिए आज इस ऊँचाई तक पहुँचा है। उसे बस इतना मालूम है कि वह अपना सारा काम राष्ट्रहित में कर रहा है। आज राष्ट्र को नए प्रकार के हथियार चाहिए, बम चाहिए, राकेट-मिसाइल चाहिए। नई वैज्ञानिक खोजों और टेक्नोलोजी से ही राष्ट्र उन्नति करेगा। बायो मेडिकल इंजीनियरिंग का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। अब तो आदमी का दिल बदल दो, दिमाग बदल दो, जिगर-गुर्दा बदल दो। मेडिकल साइंस में सब कुछ संभव हो रहा है। रोबोट को आदमी जैसा बना दो और आदमी को हुक्म का गुलाम। उसे कमांडर की हँसी याद आई। सिर्फ हुक्म का इक्का और बादशाह ही नहीं, गुलाम भी.... वह मुस्कराने लगा और सोचते-सोचते न जाने कब सो गया।

दूसरे दिन वे समय से तैयार हो गए। दो नितांत नए फौजी अफसर उन्हें लेने आए थे। उनमें से एक बड़ी मूँछों वाला मस्त किस्म का लगता था, उसके कमांडर जैसा। उसने बहुत गर्मजोशी से हाथ मिलाया। दूसरा बेहद गोरा लाल चेहरे वाला था और एक अजब सख्त भाव फैला था उसके पूरे व्यक्तित्व और हाव भाव में! ऊहं! उसे क्या करना है? उसका काम अपने कमांडर के साथ रहना और मिशन जंगल की वैज्ञानिक उपब्धियों को देखना-परखना है।

दो गाड़ियों में बैठकर चल पड़े वे लोग। अबकी वह मूँछों वाला और उसका कमांडर एक गाड़ी में थे और उसके साथ वही लाल चेहरे वाला था। दो किलोमीटर के

सफर में वे दोनों ही चुप थे।

सँकरे, ऊँचे दरख्तों वाले रास्ते से गुजरते हुए अब एक चौरस मैदान नजर आने लगा। जब वे लोग उसे पार कर एक इमारत के सामने पहुंचे तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। हूबहू पहली जैसी इमारत भी यह थी। फर्क सिर्फ यह था कि यह इमारत मैदान के सामने थे जब कि वह पहली वाली जंगल के छोर पर स्थित थी। वैसा ही गेट। उसी तरह की ऊंची टावर। वहीं पाँच सीढ़ियाँ ऊपर-फिर पाँच नीचे। सीढ़ियों पर खड़े हथियार बंद सुरक्षा गार्ड। इमारत की क्लोनिंग कर दी गई। क्या! वह हँसा! शायद दुश्मन को धोखा देने के लिए यह किया गया था।

बड़े हॉल से गुजरते हुए अब वे एक लंबा गलियारा पार कर रहे थे जो एक बहुत बड़े मैदान में खुल गया था। मैदान के दूसरी ओर लंबे बरामदे के साथ बैरकनुमा कमरे थे। जिधर से वे लोग आए थे, वहाँ इमारत दो मंजिला थी। ऊपरी मंजिल में प्रयोगशालाएँ थीं। मैदान के दूसरे छोर की इमारत भी दो मंजिला थी, जहां अत्याधुनिक हॉस्पीटल था। ऐसा ही उस लाल चेहरे वाले फौजी ने बताया था।

मैदान के अगले छोर से काफी दूर राडार सटेशन नजर आने लगा था। उसे लगा यहाँ एक अलग किस्म का साम्राज्य है। चुपचाप सा... रहस्य की पर्तों में घिरा। पूरा कार्यक्रम योजनाबद्ध रूप से तय था। मैदान में उपस्थित दो अन्य फौजियों ने उनकी अगवानी की। उसने अब गौर किया। अब वहाँ उन फौजियां के अलावा वे दो थे और वह मूंछों वाला था जो साथ आया था। लाल चेहरे वाला वहीं गलियारे से वापस चला गया था।

वे लोग मैदान में आगे बढ़ रहे थे और अब सब कुछ स्पष्ट था। मैदान के बीचोंबीच तीस नौजवान सैनिकों की एक टुकड़ी सावधान की मुद्रा में थी। उनके हथियार कंधे पर थे। ग्रुप कमांडेट सामने खड़ा था। सभी जवानों के चेहरे भावशून्य थे। आँखें जैसे पत्थर की दूर शून्य में गड़ी हुई।

मूँछों वाले ने उसके कमांडर से कुछ कहा। कमांडर ने सिर हिलाया और अपना चेहरा उसके निकट ले आया उसकी बात सुनने के लिए। उसने सोचा कि उसे भी यहां के बारे में जानना चाहिए। आखिर वह भी इस महत्त्वपूर्ण योजना के साथ जुड़ा है। इसीलिए तो वह यहां मौजूद है।

वह कमांडर और मूँछ वाले के ठीक पीछे सरक गया और अपने कान उनकी बातचीत के साथ लगा दिए। वह मूँछ वाला कह रहा था।

''यह मिशन जंगल का ही प्रोजेक्ट है। प्रोजेक्ट माउँटेन!''

''यह पहली टीम है?''

''जी हाँ।''

''और कितनी टीमें यहाँ हैं।''

''दो और हैं, लेकिन अभी तैयार नहीं हैं। दो साल और लगेंगे।''

''यह टीम कब से तैयार हो रही है।''

''पिछले पाँच साल से।''

''इनका ग्रुप कमांडेंट?''

''वह नार्मल था पहले। उसे प्रोजेक्ट में शामिल करना चाहते थे, लेकिन वह प्रॉब्लम करने लगा। इसीलिए सर्जरी करनी पड़ी थी उसकी भी।''

''इसे मालूम है?''

''नहीं!''

''अब?''

''अब सब ठीक है। सब एक जैसे हैं। आप जाँच कर सकते हैं।''

''वैरी गुड!''

कमांडर ने संतोष के साथ सिर हिलाया। मूँछों वाला अब पीछे आ गया। वह भी अपनी जगह पर खिसक लिया।

कमांडर धीरे-धीरे चलता हुआ टुकड़ी के पास पहुँचा। अब वह ग्रुप कमांडेंट की बगल में था। वह और मूँछोवाला भी उसके पीछे आ गया।

कमांडर की कड़कती आवाज सुनी उसने जो ग्रुप कमांडेट को संबोधित कर रहा था-

''मिस्टर कमांडेट, क्या यह आपका पूरा ग्रुप है।''

''यस सर!''

''ये सब क्या यहीं से रिक्रूट किए गए हैं?''

''नो सर, ये साउथ से आए हैं?''

''और यहाँ के लड़के?''

''वे साउथ भेज दिए गए सर!''

''इनका ट्रेनर कौन है?''

''मैं हूं सर!''

''क्या सबका मेडिकल ट्रीटमेंट ...मेडिकल चेकअप किया जा चुका है?''

''यस सर!''

कमांडर ने मूँछ वाले की ओर देखा। मूँछ वाले ने आँखों ही आँखों में कुछ कहते हुए आश्वस्त किया। कमांडर ने फिर पूछा–

''कितनी आज्ञाकारिता है?''

''सौ फीसदी सर!''

''कोई संशय! कोई समस्या!''

''नहीं सर?''

''क्या प्रदर्शन कर सकते हो? क्या सीमा है?''

मूँछों वाला सामने आया और उसने ग्रुप कमाडेंट से धीरे से कुछ कहा, जिस पर उसने सहमति जताई और फिर कमांडर से बोला–

''यस सर!''

उस नौजवान ग्रुप कमांडेट ने अपनी टुकड़ी को मैदान का एक चक्कर लगाते हुए मार्च कराया और फिर सबको सावधान की मुद्रा में खड़ा कर दिया। फिर अपनी टुकड़ी को कमांड करते हुए कहा–

''जवान नंबर एक! आप उस खंभे तक जाइए।''

सबसे आगे खड़ा, नीली आँखों वाला नौजवान लेफ्ट–राइट करता हुआ उस खंभे तक गया जो वहाँ से लगभग सौ मीटर की दूरी पर था। उसकी आवाज़ फिर गूँजी–

''नबंर एक! अब आपके ऊपर आक्रमण होना है।''

''यस सर।''

''कंपनी रेडी टू अटैक। टारगेट नंबर वन।''

बाकी सभी जवानों ने दौड़कर नंबर एक को आधा गोला बना कर घेर लिया। उसने अब ध्यान से देखा, ग्रुप कमांडेट को छोड़कर वे सभी किशोर वय की दहलीज

पार कर चुके नौजवान थे। उस खंभे से जहां वह नीली आँखों वाला नंबर एक जवान खड़ा था, घेरने वाले जवानों की बीच मुश्किल से बारह–पन्द्रह मीटर की दूरी थी।

ग्रुप कमांडेंट की आवाज फिर गूँजी–

''नबंर वन, यू आर गोइंग टू बी किल्ड। ये लोग तुम्हें मार डालेंगे। तुम समझ रहे हो?''

''यस सर!''

''अपना हथियार फेंक दो, नंबर एक! पुट डाउन योर वेपन! वन–टू...''

और नीली आँखों वाले उस नौजवानों ने चेहरे पर बिना कोई शिकन लाए अपना हथियार कंधे से हटा कर नीचे डाल दिया।

वह बेहद कौतूहल से सब देख रहा था, अब सिहर उठा। लाख यह नकली युद्ध हो लेकिन ऐसा नाटक झुरझुरी पैदा करने वाला था। तभी कमांडेट की आवाज फिर गूँजी,

''फायर!'' अटैक नंबर वन। किल हिम! आक्रमण! टारगेट नंबर एक।''

सभी जवानों ने एक पल को भी हिचके बिना अपने हथियारों से अपने ही साथी नंबर पर एक तड़ातड़ गोलियाँ बरसाना शुरू कर दिया। गोलियों की आवाज से मैदान गूँज उठा।

वह साँस रोक कर देख रहा था। उसे मालूम था कि यह नाटक है और नकली गोलियाँ हैं जो सिर्फ आवाज करती हैं।

लेकिन उसके भय की सीमा न रही।

उसने देखा कि नंबर एक का शरीर छलनी होकर लहुलुहान पड़ा था। सभी जवान वापस अपनी पहली पोजीशन में लौट चुके थे। उसके कमांडर और मूँछों वाले के चेहरे खुशी से चमक रहे थे। यह उनकी योजना में नहीं था, लेकिन यह परीक्षण बेहद सफल था।

उसका शरीर काँपने लगा। तो यह नाटक नहीं था? यह उन जवानों के दिमाग का परीक्षण था जिनके ऑपरेशन हो चुके थे। जिनके दिमागों की इंजीनियरिंग की जा चुकी थी। वे शत–प्रतिशत सफल थे। आज्ञाकारिता सौ फीसदी पूरी थी। उसका सर चकराने लगा। ये जीते जागते इनसान थे या उसकी प्रयोगशाला के चूहे थे? वह भी तो अपने चूहों के साथ ऐसे ही परीक्षण करता रहा है। चूहों की संवेदना के स्नायु केन्द्रों को नष्ट करके और थोड़ी सी दिमागी कतर–ब्योंत करके वो भी तो चूहों से मनमाफिक काम

कराता रहा है। उसके प्रयोग भी तो सफल होते रहे हैं।

वही प्रयोग यहां इनसानों पर किए गए हैं। सौ फीसदी सफल! उसे अब समझ में आया उन प्रयोगों का सफल परीक्षण देखने और सफलता के स्तर को आँकने, जाँचने-परखने के लिए उसे यहाँ लाया गया है। उसे अपने आगे के काम को यहाँ तय करना होगा। इसी प्रोजेक्ट को विस्तार देना होगा। उसकी प्रयोगशाला में चूहों के बदले क्या ये नौजवान लड़के होंगे? उसके चूहे क्या अब लड़कों में तब्दील किए जाएंगे...

उसके पैर डगमगाने लगे! उसकी नजर ग्रुप कमांडेट पर पड़ी। वह पहले जैसी मुद्रा में था। उसके जवान भी उसी तरह खड़े थे...निर्विकार...अगले आदेश की प्रतीक्षा में। पूरा माहौल एकदम शांत था, जैसे कुछ हुआ ही न हो। खून में लथपथ नंबर एक की नीली आँखें आसमान की ओर देख रही थीं। अचानक वह काँपने लगा। उसे बुखार चढ़ने लगा और बेतरह ठंड लगने लगी। उसने इधर-उधर देखा-कोई सहारा मिले। वह गिरने लगा था।

''क्या बात है? आर यू ऑल राइट...''

कमांडर की आवाज़ जैसे कोसों दूर से आ रही हो। उसका सर चक्कर खाने लगा। पूरे मैदान में न जाने किधर से आकर ढेरों चूहे धमाचौकड़ी मचाने लगे थे। सफेद चूहे... लाल गुलाबी आँखों वाले...गुलाबी थूथन लिए...इधर-उधर सूँघते...वे चूहे अब उसके ऊपर चढ़ने लगे थे।

वह धम से जमीन पर गिर पड़ा। उसके बदन में सचमुच चीटिंया सी रेंग रही थीं। अचानक उसे महसूस हुआ कि वह खुद एक चूहे में तब्दील हो गया और कमांडर उसको गर्दन से पकड़ कर उसके माथे पर निशान लगा रहा है ''इसकी भी सर्जरी होगी...दिमाग ठीक करो इसका..''

उसका दम घुटने लगा। छाती पर बेतरह बोझ था। ''दिल-बिल क्या होता है माई डियर! ब्लॉक करो इसे...'' कमांडर का अट्टहास उसके कानों में गूँजने लगा। वह आँख खोलना चाहता था, लेकिन चारों ओर अँधेरा था। हाथ-पैर हिलाना चाहता था लेकिन बदन सुन्न था।

''एक्सीलेंट आफिसर! एक्सीलेंट, आपका प्रोजेक्ट परफेक्ट है। मैं रिपोर्ट भेजूँगा हैडक्वार्टर!''

कमांडर जरूर मूँछ वाले की पीठ थपथपा रहा होगा। वह उठना चाहता था। कमांडर के साथ वापस जाना चाहता था। वह गिनीपिग नहीं है। वह तो फँस गया है

इस जंगल में। नहीं, वह नहीं जाएगा खँभे के पास... ''यू आर गोइंग टू बी किल्ड...तुम डरपोक आदमी...!''

अचानक जैसे बादल गड़गड़ाने लगे। उसकी चेतना डूबने लगी। उसे लगा कि बारिश हो रही है। तभी न जाने कहाँ से उषा वहाँ आ गई। वह उसका हाथ पकड़कर खींच रही थी-छोड़ो यह सब। जाने दो चूहों को। कितना सुहाना मौसम है। जंगल में बारिश बहुत अच्छी लगती है। आओ, दौड़ लगाएँ...।

नमिता सिंह

जन्म : 4 अक्तूबर, 1944

प्रमुख कृतियाँ : खुले आकाश के नीचे, राजा का चौक, नीलगाय की आँखें, जंगल गाथा, निकम्मा लड़का (सभी कहानी संग्रह) अपनी सलीबें (उपन्यास)